सन्त-वाणी

सम्पादक

श्री वियोगी हरि

प्रस्तावना-लेखक

आचार्य काका कालेलकर

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री
सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली।

संस्करण
चौथी बार : १९५७

मूल्य
डेढ़ रुपया

मुद्रक
अमरचन्द्र
राजहंस प्रेस,
दिल्ली ४८-५७

प्रस्तावना

जबकि आज देश में धर्म-धर्म के बीच झगड़े बढ़ रहे हैं और चन्द लोग यहां तक कहने लगे हैं कि धर्म-मजहब को बलाएं ही न रहें तो अच्छा; 'सन्त-वाणी' का यह संग्रह देखकर अत्यन्त आनंद और सन्तोष होता है। दावानल चारों ओर भड़क रहा हो और बीच में वर्षा हो रही हो तब जैसा सन्तोष होता है वैसा ही असर 'सन्त-वाणी' का देश के सन्तप्त हृदय पर पड़ता है। लड़ाई-झगड़े होते हैं धर्म के मिथ्या अभिमान से, धर्म के नाम पर चलाये जाने वाले स्वार्थ, मत्सर और द्वेष से, अथवा अज्ञान के कारण वास्तविक भाव को छोड़कर शब्दों को दिये हुए महत्त्व से। सन्त कहते हैं—धर्म कोई घर का पशु तो है नहीं कि जिसका पालन-पोषण बाह्यरूप से किया जा सकता हो। धर्म तो जीवन-परिवर्तन है, नई दृष्टि प्राप्त करना है। धर्म एक विशिष्ट कोटि का जीवन है। उस जीवन का जिन्होंने प्रत्यक्ष परिचय पा लिया उनके मन में बाह्य सिद्धान्तों के झगड़े गौण हो जाते हैं। पहुंचे हुओं की तो 'एक ही बात' होती है। "सब साधो का एक मत, बिच के बारह बाट।"

जब देश में धर्म-अधर्म के लड़ाई-झगड़े बढ़ गये तब इन सन्तों ने अनेक रूपों से अवतार ले-लेकर धर्म का हार्द ढूंढ़ निकाला और लोगों को दिया। सन्तों में सबके सम्हालने की समन्वयकारी वृत्ति थी, परस्पर स्वार्थ का मेल जमाने के लिए धूर्तों का किया हुआ वह समझौता नहीं था। सन्त में और कोई श्रेष्ठता हो या न हो, उसका प्रथम लक्षण उसकी निस्पृहता है। जो निस्पृह है वही निर्भय भी है। इसीलिए इन सन्तों ने धर्माग्रही और धर्माभिमानी कर्मकाण्डी लोगों पर कोड़े लगाते जराभी संकोच नहीं किया।

सन्तों के पास इस सुधार-कार्य के लिए कोई निश्चित योजना या कार्य-पद्धति नहीं थी। उन्हें पुरानी रचना तोड़कर किसी नई रचना की स्थापना नहीं करनी थी। वे रचना-मात्र को उदासीनता से देखते थे। कभी कहते थे कि इन ग्रन्थों में क्या खोजते हो, उनमें क्या धरा हुआ है! ग्रन्थों को छोड़ दो। ग्रन्थों के सहारे हृदय-ग्रन्थि खुलने की नहीं। 'मसि कागज के आसरे क्यों टूटै भव-बन्ध'। कभी कहते थे कि इन ग्रन्थों का कोई दोष नहीं। सोचने वाले लोग ही जहां स्वार्थी, अज्ञानी या मोह-मत्त हों, वहाँ बेचारे धर्म-ग्रन्थ क्या करें।

सन्तों ने सब से बड़ा यह काम किया कि धर्म और रूढ़ि के नाम पर जो भ्रम, वहम या गलतफहमियां फैली हुई थीं, उनको दूर कर दिया। सम्भवतः सन्तों का सबसे श्रेष्ठ कार्य यही है।

लोक-भ्रम को दूर करने के साथ-साथ उन्होंने व्यवहार-शुद्धि का कार्य भी काफी किया है। उनके जमाने में भिन्न-भिन्न जातियों में जो कुछ छल-कपट और अमानुषता थी उसे भी दूर करने के लिए सन्तों ने काफी प्रयत्न किया है। वे सत्य के प्रचारक थे। जहां तक उनके जीवन का सम्बन्ध आता था, वे सत्याग्रही भी थे। किन्तु समाज की कमजोरी को और उनके और अपने बीच में रहने वाले अन्तर को देखकर सत्य-प्रचार से अधिक आग्रह उन्होंने नहीं रखा।

सामाजिक सुधार के बारे में भी सन्तों ने कुछ कम काम नहीं किया। छुआछूत को उन्होंने ऐसा फटकारा है कि अगर स्वार्थी ब्राह्मणों ने उनका काम बिगाड़ दिया होता तो छुआछूत कभी की नष्ट हो गई होती।

सन्त जानते थे कि जाति-व्यवस्था और वर्ण-व्यवस्था समाज के आर्थिक-संगठन के लिए चाहे जितनी आवश्यक हो इस व्यवस्था से समाज

का कल्याण और व्यक्ति का उद्धार न कभी हुआ है और न होने की सम्भावना ही है।

सन्त-मत का प्रादुर्भाव यों तो अनादिकाल से है, किन्तु जिस 'सन्त-वाणी' का यहां संग्रह किया गया है, उस वाणी का और उसकी परम्परा का प्रारम्भ तो शायद कबीर से ही हुआ है। कबीर ने जो कार्य किया उसकी प्रेरणा तो उन्हें स्वामी रामानन्द से ही मिली थी। कबीर का हिन्दुओं और मुसलमानों—दोनों के ही साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण उनमें असाधारण योग्यता आ गई थी। निर्भयता के साथ वह दोनों को फटकारते थे। दोनों को शुद्ध सत्य-धर्म का रास्ता दिखाते थे। आज हमारे देश में और खासकर गाँवों में जो हिन्दू-मुस्लिम-एकता दीख पड़ती है वह सन्तों की ही बदौलत है। सन्तों ने सामाजिक नियम ज्यों-के-त्यों ही रहने दिये। वे जानते थे कि सामाजिक रूढ़ियों के पीछे विशिष्ट वर्गों के हित-अहित का भी सवाल आता है। लोगों को इन रूढ़ियों की तरफ उदासीन बना दिया तो आधा काम हो गया। बाकी का आधा काम युग-प्रवर्त्तक काल स्वयं ही कर लेगा। सन्तों की इस दृष्टि में शायद दीर्घ-दर्शिता थी। शायद अपने कार्य को दृढ़ बनाने के सम्बन्ध में उदासीनता भी थी। समय जाते-जाते समाज में रूढ़ि ने अपना आसन फिर से जमा लिया और निश्चय किया कि सन्तों का उपदेश सन्तों के ही लिए अच्छा है। लोगों में न तो सन्तों का त्याग है और न सन्तों की शान्ति ही। सन्तों के कार्य में यह जो कमजोरी रह गई इसे सन्तों की कार्य-पद्धति का दोष मानें या मनुष्य-स्वभाव के नैसर्गिक दोष का परिणाम मानें?

संतों ने शास्त्र-धर्म को श्रद्धांजलि देकर एक बाजू पर रख दिया। लोक-धर्म में जो अच्छा अंश उन्हें मिला उसी की उन्होंने प्रतिष्ठा बढ़ाई और अनिष्ट अंश का प्राण-पण से विरोध किया। अपना अनुभव, अपना

निरीक्षण और लोक-कल्याण के आधार पर उन्होंने विशिष्ट सिद्धान्त-निरपेक्ष धर्म चलाया।

एक बात खासतौर से ध्यान में रखनी चाहिए। इन संतों की गंगोत्री तो नवनाथों के योगमार्ग में है। हठयोग और कीमिया का प्राधान्य उनमें बहुत था। बाद में इन दोनों चीज़ों की प्रतिष्ठा कम होने लगी और सुरता-साधक ध्यानयोग का महत्त्व बढ़ा। ध्यानयोग चूंकि लोक-सुलभ नहीं था, इसलिए उसके साथ-साथ भक्ति-योग आगया। अनासक्ति और त्याग तो संत-धर्म में प्रारम्भ से अंत तक भरा ही हुआ है। हठयोग की प्रतिष्ठा संतों ने अपने मूक-विरोध से जिस तरह कम की, उसी तरह ब्रह्मचर्याश्रम की भी प्रतिष्ठा संतों ने बिना किसी विरोध के कम कर दी। जो ब्रह्मचारी है, वही संत हो सकता है—गृहस्थाश्रम संतों के लिए है ही नहीं, ऐसे विचार को उन्होंने धीरे-धीरे नरम बनाकर सादगी, संतोष, अपरिग्रह, और भूतमात्र के कल्याण की दया-वृत्ति, इन्हीं वस्तुओं को उन्होंने जीवन का सार-सर्वस्व बताया।

संतों के प्रभाव से हमारा राष्ट्रीय चारित्र्य बहुत ही ऊँचा उठा, इसमें कोई संदेह ही नहीं। किन्तु आजकल संत-मत के प्रचार के बारे में एक शिकायत बार-बार उठती है। वह यह कि संतों ने लोगों में जो संतोष-वृत्ति और अनाग्रह पैदा किया, उसी का नतीजा है कि लोगों में लोक-जीवन के बारे में अनुत्साह पैदा होगया। संत-वाणी का अधिक-से-अधिक प्रचार हुआ—सिखों में, वैष्णवों में और महाराष्ट्र के वार्करी लोगों में। संत-मत के और संत-वाणी के प्रचार के गुण-दोष इन लोगों के जीवन से निश्चित करने का मोह ऐतिहासिकों को अवश्य होगा, किन्तु ऐसा करना उचित नहीं है। प्राचीन काल से मनुष्य ने अपने सामाजिक गुण-दोष के अनुसार अपने धर्म को समझ लिया और

अपने संकुचित दृष्टि के अनुसार उसका पालन किया। जो कायर हैं, वे अहिंसा की ढाल के पीछे रह कर अपनी कायरता को ढांक देते हैं, इससे अहिंसा-धर्म कायर का धर्म सिद्ध नहीं होता।

भाषा की दृष्टि से भी संतों की सेवा कुछ कम नहीं है। संतों ने तो भाषा की एक टकसाल ही खोल दी है, जिसमें से नई-नई किस्म की अशर्फियां नित्य ढल-ढलकर निकलती रहती हैं। बंदूक की गोली की तरह संत-वाणी सीधे मनुष्य के हृदय तक पहुंचकर एक क्षण के अन्दर उसकी मरी हुई धर्म-बुद्धि को पुनर्जीवित कर देती है। संतों की वाणी बहुअर्थ, जनमनोहर, अल्पाक्षर, मधुर और सत्यपूर्ण होती है। उनकी शैली निश्चयात्मक होती है, क्योंकि वह जीवनमूलक होती है, इसी कारण वह लोक-सुलभ भी होती है। संतवाणी किसी भी राष्ट्र की सर्वश्रेष्ठ पूँजी है। वह वाणी का विलास नहीं, किन्तु जीवन का निचोड़ है, इसीलिए यह जीवित और अमर होती है। संतवाणी वह स्वर्गीय गंगा है, जिसमें स्नान-पान करने से लोक-जीवन पवित्र, समृद्ध, समर्थ और स्वतंत्र हो जाता है।

भिन्न-भिन्न संतों के वचनों का ऐसा संग्रह करना दीर्घकाल के संकल्प और प्रयत्नों का फल होता है। उसके पीछे जो परिश्रम किया जाता है, उसके साथ जो अपूर्व आनन्द मिलता है, वही उस परिश्रम का मधुर फल है। इस संग्रह के पठन-पाठन से जो आनन्द होता है, उससे कहीं बढ़कर संग्रहकार को इन रत्नों का चुनाव करने में हुआ होगा।

संग्रह करने के बाद संग्रहकार ने जो भिन्न-भिन्न शीर्षकों के नीचे इनका वर्गीकरण किया है, वे शीर्षक ही सन्तमत का रहस्य बताने में समर्थ हैं।

संग्रह के साथ-साथ हिन्दी गद्य में संग्रह का जो भावार्थ संग्रहकार ने दिया है, उनमें उसकी कवित्व-शक्ति भी प्रकट होती है। इससे पढ़ते हुए एक गद्य-काव्य का रसास्वाद मिलजाता है।

मुझे विश्वास है कि जिनकी जन्म-भाषा हिन्दी नहीं है उनके लिए यह भावार्थ बड़ी सहायता पहुँचायेगा। अपनी-अपनी प्रान्तीय भाषाएँ बोलनेवाले हम हिन्दी-प्रेमियों का यह विशेष कर्त्तव्य है कि हम अपनी-अपनी भाषाओं के संतों की सूक्तियों का ऐसा ही संग्रह संकलित कर उसे नागरी अक्षरों में छाप दें और हिन्दी में उसका अनुवाद भी दे दें। वियोगीजी की गद्यकाव्य शक्ति हरेक भाषान्तरकार में शायद न हो, किन्तु कवियों की वाणी का तेज और उसकी मधुरिमा अपने करभार के राष्ट्रभाषा को समृद्ध किये बिना नहीं रहेगी।

'सर्वोदय कार्यालय',
वर्धा,
नवम्बर, १९३८

—काका कालेलकर

विषय-सूची

सन्त-वाणी

: १ :

"घट-घट व्यापक राम"

१

सब घट मेरा साइयाँ, सूनी सेज न कोइ;
वा घट की बलिहारियाँ, जा घट परगट होइ

[कबीर

२

पावकरूपी साइयाँ, सब घट रह्या समाइ;
चित चकमक लागे नहीं, ताते बुझ-बुझ जाइ ।

[कबीर

३

सब घट माहीं रमि रह्या, बिरला बूझै कोइ;
सोई बूझै राम को, जो रामसनेही होइ ।

[दादूदयाल

४

'धरनी' तन में तखत है, ता ऊपर सुलतान;
सेव मोजरा सबहि का, जहँलौं जीव जहान ।

[धरनीदास

५

जोति-सरूपी आतमा, घट-घट रह्यो समाइ;
परम तत्त मनभावनो, नेक न इत-उत जाइ ।

[यारी

: १ :

"घट-घट व्यापक राम"

१. मेरा साईं हर घट के अन्दर मौजूद है;
एक भी सेज नहीं, जो मेरे प्यारे सजन से सूनी हो।
पर बलिहारी तो उस घट की है—
जिसमें प्रकट हो वह प्यारा साईं दीदार देता है।

२. मेरा साईं आग की नाईं,
घट-घट में समाया हुआ है।
पर लगन के चकमक से चित्त लगे तब न—
इसीसे तो मेरी यह लौ बुझ-बुझ जाती है।

३. राम मेरा रम तो हर घट में रहा है,
पर इस भेद को समझता कोई विरला ही है।
राम की अलख व्यापकता को तो वही समझेगा,
जो उसके प्रेम के गहरे रंग में रँगा होगा।

४. इस तन के अन्दर ही तो वह शाही तख्त है,
जिसपर हमारा शाहों का शाह आसीन है।
जहान में जितने भी जीव हैं,
वहीं से बैठे-बैठे वह सबका मुजरा लिया करता है।

५. ज्योतिरूप से यह आत्म-तत्त्व हर घट में समाया हुआ है,
मेरा यह परमप्यारा तत्त्व
एक क्षण भी इधर-उधर नहीं जाता।

६

घट-घट गोपी, घट-घट कान्ह;
घट-घट राम, अमर अस्थान।

[दादूदयाल

७

खालिक खलक, खलक में खालिक
सब घट रहा समाइ ।

[कबीर

८

जिकिर करो अल्ला का बाबा,
सबस्याँ अन्दर भेस !

[तुकाराम

६

साहिब तेरी साहिबी, कहा कहूं करतार;
पलक-पलक की दीठि में, पूरन ब्रह्म हमार।

[गरीबदास

१०

दिल के अन्दर देहरा, जा देवल में देव;
हरदम साखीभूत है, करो तालु की सेव।

[गरीबदास

११

एते करता कहाँ हैं, वह तो साहिब एक;
जैसे फूटी आरसी, टूक-टूक में देख।

[गरीबदास

६. हर घर में सुरत की गोपी है,
और घट-घट में गोपिका-बिहारी कृष्ण ।
मेरे राम का अमर ठौर तो हर घट के अन्दर है ।

७. अजब रहस्य है !
ख़ालिक़ में यह सारा खलक़ समाया हुआ है,
और खलक़ में मेरा ख़ालिक़ !
हमें हर घट में यही अजब लीला नज़र आ रही है ।

८. बाबा, तुम तो सदा उस अल्लाह के ही गुण गाओ,
जो सबके अन्तर में रम रहा है ।

९. मेरे पूर्णब्रह्म स्वामी, क्या कहूँ तेरी महामहिमा को !
धन्य ! हर पलक और हर नज़र में तेरा दर्शन मिल रहा है ।

१०. उस देवता का मन्दिर तेरे दिल के अन्दर ही है—
उसको तू सेवा और उसी की पूजा कर ।
क्या तेरा हरेक श्वास इसका साक्षी नहीं है ?

११. अनेक कर्त्तार तो हैं नहीं,
सरजनहार स्वामी तो एक ही है ।
दर्पण के हर टुकड़े में सूरत तो एक ही नज़र आती है ।

१२

सात सरग असमान पर, भटकत है मन मूढ़;
खालिक तो खोया नहीं, इसी महल में ढूँढ़ ।

[गरीबदास

१३

एक संग्रता, सबद् घट, एक द्वार सुख-संच;
इक आत्मा सब भेष मों, दूजो जग-परपंच ।

[भीखा

१४

अब हौं कासों बैर करौं ?
कहत पुकारि प्रभू निज मुख ते—
"घट-घट हौं बिहरौं ।"

[हरिदास

१५

काहे रे, बन खोजन जाई ?
सर्वनिवासी सदा अलेपा,
तोही संग समाई ।
पुष्प-मध्य ज्यों बास बसत है,
मुकुर-मध्य ज्यों छाई;
तैसे ही हरि बसै निरन्तर,
घट ही खोजो भाई !

[नानक

१६

गुनहगार अपराधी तेरे, भाजि कहाँ हम जाहिं;
'दादू' देख्या सोधि सब, तुम बिन कहिं न समाहिं ।

[दादूदयाल

१२. अरे भोंदू, कहाँ भटक रहा है तू
स्वर्गों में और सातवें आसमान पर ?
खालिक़ की खोज में क्यों व्यर्थ हैरान हो रहा है ?
ज़रा उसे अपने दिल के महल में तो तलाश !

१३. एक ही संप्रदाय है, एक ही पंथ,
और हर घट में आनन्द-स्रोत का एक ही द्वार है !
आत्मा तो वही सारी सूरतों में झलक रही है;
बाकी तो दुनिया बखेड़ा ही है ।

१४. कहो, अब मैं किससे वैर करूँ !
जबकि मेरे प्रभु पुकार-पुकार कहते हैं कि—
"घट-घट में मैं ही विहार कर रहा हूँ।"

१५. अरे ! उसे तू वन में क्यों खोजने जारहा है ?
वह घट-घट वासी अलिप्त स्वामी तो
तेरे रोम-रोम में समाया हुआ है ।
फूल में जैसे सुगन्ध बसती है,
और दर्पण में जैसे परछाईं,
उसी भाँति श्री हरि का तेरे अन्तर में निरन्तर निवास है,
उसे तो अपने घट के अन्दर ही खोज ।

१६. तेरे गुनहगार भागें तो भागकर आखिर जायें कहाँ ?
छिपने के तो सारे ठौर खोज डाले सरकार !
पर जहा भी गये, वहीं तुझे मौजूद पाया !

१७

'दादू' देखौं दयाल कों, सकल रहा भरपूरि;
रोम-रोम में रमि रहा, तू जिन जाणै दूरि।

[दादूदयाल

१८

गुरु-परसादी दुरमति खोई,
जहँ देख्या तहँ एका सोई।

[नानक

१९

'दादू' देखौं दयाल कों, बाहरि भीतरि सोइ;
सब दिसि देखौं पीव कों, दूसर नाहीं कोइ।

[दादूदयाल

२०

'भीखा' केवल एक है, किरतिम भया अनन्त;
एकै आतम सकल घट, यह गति जानहिं संत।

[भीखा

२१

हम सब माहिं, सकल हम माहिं;
हमते और दूसरा नाहिं।

[कबीर

२२

गगरी सहस पचास, जौ कोउ पानी भरि धरै;
सूरज दिपै अकास, 'मुहमद' सब महँ देखिए।

[मलिक मुहम्मद जायसी

१७. अपने दयाल मालिक को मैं हर जगह मौजूद पाता हूँ,
मेरा राम मेरे रोम-रोम में रम रहा है ।
मत समझ कि मेरा स्वामी मुझसे दूर है ।

१८. सतगुरु की यह प्रसादी ही समझो कि—
मेरी दुष्ट द्वैतबुद्धि दूर हो गई ।
अब तो जहाँ देखता हूँ,
वही-वही एक नजर आता है ।

१६. बाहर-भीतर सब जगह—
उसी दयाल मालिक को मौजूद पाता हूँ ।
हर दिशा में वही प्रीतम प्यारा नज़र आता है;
दूसरा तो कोई है ही नहीं ।

२०. वह तो एक ही है,
अनन्तरूप तो यह सारा कृत्रिम आभास है ।
'घट-घट में एक ही आत्मा है'
इस रहस्य को केवल सन्त ही जानते हैं ।

२१. हम सब में हैं, और सब हम में हैं—
हमसे भिन्न दूसरी कोई वस्तु नहीं ।

२२. पचास हज़ार घड़ों में पानी लाकर भर दो;
और फिर देखो, आकाश में दिपने वाले सूरज की परछाईं
हर घड़े में दिखती है या नहीं ?

: २ :

'राम वही, रहमान वही'

१

बाबा, नाहीं दूजा कोई ।
एक अनेकन नाम तुम्हारे, मो पै और न होई
अलख इलाही एक तू, तू ही राम रहीम;
तू ही मालिक, मोहना, केसौ नाम करीम ।
साईं सरजनहार तू, तू पावन, तू पाक;
तू कायम करतार तू, तू हरि हाजिर आप ।
अविगत अल्लह एक तू, गनी गुसाईं एक;
अजब अनूपम आप है, 'दादू' नाम अनेक ।

[दादूदयाल

२

अलह कहौ, भावे राम कहौ;
डाल तजौ सब मूल गहौ ।
अल्लह राम कहि करम दहौ;
झूठे मारग कहा बहौ ?

[दादूदयाल

: २ :

"राम वही, रहमान वही"

१. बाबा, तू-ही-तू है; दूसरा और कौन है ?
सदा-सर्वत्र एक तू ही है; हां, नाम तेरे असंख्य हैं।
तू ही अलख, और तू ही इलाही; तू ही राम और तू ही रहीम।
मेरे मालिक, तू ही मोहन है, और तू ही कृष्ण केशव !
और प्यारे, तुझीको करीम भी कहते हैं।
स्वामी भी तू, और सरजनहार भी तू;
प्रभो, तू ही पावन है, तू ही पाक परवरदिगार है।
तू ही सनातन पुरुष है, और तू ही कर्त्तार है।
हरि, जहाँ भी देखता हूँ, तू-ही-तू नज़र आता है।
राम, अणु-परमाणु में तू ही रमा हुआ है !
अल्लाह, फिर भी तू एक है, अद्वितीय है !
जगत् का तू ही एक धनी है—
खलक का तू ही एक स्वामी है।
तू अद्भुत है, अनुपम है; है एक, पर नाम तेरे अनेक हैं—
'दादू' की समझ में तो कुछ ऐसा ही आया है।

२. अरे बाबा, कुछ भी कहो—
अल्लाह कहो, चाहे उसे राम कहो,
तुम तो बस एक मूल को पकड़ लो—इन डालों को छोड़ दो।
अल्लाह या राम के प्रेम की आग से जला दो
अपने इन वासना-जनित कर्मों को।
क्यों व्यर्थ असत् के मार्ग से चिपटे हुए हो ?

३

कोई राम, कोई अल्लाह सुनावै,
पै अल्लाह-राम का भेद न पावै।

[दादूदयाल

४

कृष्ण करीम, रहीम राम हरि, जब लगि एक न पेखा,
वेद कतेब कुरान पुराननि, तब लगि भ्रम ही देखा।

[रैदास

५

'दास मलूक' कहा भरमौ तुम—
राम रहीम कहावत एकै।

[मलूकदास

६

अलख अल्लाह, ब्रह्म खालिक खुदा है एक,
मेरे तो अभेद-भाव माया-मति खोई है;
राम मेरे प्रान, रहिमान मेरे दीन-ईमान,
भूल गयो भैया, सब लोक-लाज धोई है।
कहत 'मलूक', मैं तो दुविधा न जानौं दूजो;
जोई मेरे मन में है, नैनन में सोई है।
हरि हजरत मोहि माधव मुकुन्द की सौं,
छाँड़ि केसौराय, मेरो दूसरो न कोई है॥

[मलूकदास

३. कोई तो राम की बात सुनाने लग जाता है,
और कोई अल्लाह की—
पर किसी वक्ता को न अल्लाह का भेद मिला, न राम का!

४. जबतक तूने कृष्ण और करीम को,
राम और रहीम को अभेद की दृष्टि से नहीं देखा—
तबतक वेद में, कुरान में और पुराण में
तुझे भ्रम-ही-भ्रम नजर आयेगा।

५. मियाँ, पड़े किस भ्रम में हो!
क्या राम और रहीम में कोई भेद है?
ये तो एक ही प्रीतम प्रभु के दो नाम हैं।

६. मुझे तो भाई, अभेद की पारस-मणि हाथ लग गई है।
मायाकृत वह भेद-बुद्धि आज दूर हो गई।
मेरे लिए तो जो अलख-निरंजन है, वही अल्लाह है,
जो ब्रह्म है वही खालिक है, और वही खुदा है।
प्राण मेरे राम में बसते हैं—
और, दीन और ईमान मेरा रहमान से लगा है।
मैं तो अब सारा भेद-भाव भूल गया हूँ।
लोक-लाज की मुझे तनिक भी पर्वाह नहीं—
जिसे जो कहना हो कहे,
मैं कोई दुविधा नहीं जानता—
दुई नजर आये तब न!
मेरी आँखों में तो वही साजन झूल रहा है,
जो मेरे दिल में समाया हुआ है।
हरि की, हजरत-की, माधव की और मुकुन्द की कसम खाकर
यह 'मलूका' कहता है—
एक केशव को छोड़कर जगत् में मुझे किसी दूसरे का
अब आसरा-भरोसा नहीं।

७

राम, रहीमा, करीम, केसव, अल्लह राम सति सोई,
वेद कुरान बिसम्भर एकै, और न दूजा कोई।

[कबीर

बुद्द जगदीस कहाँ से आया?
कहु कवने भरमाया?
अल्लह राम करीमा केसौ
हरि हजरत नाम धराया।

[कबीर

९

राम खुदाय शक्ति शिव एकै
कहु धौं काहि निबेरा?

[कबीर

१०

राम कहो, रहमान कहो,
कान्ह कहो, महादेव रे!
पारसनाथ कहो, कोउ ब्रह्मा,
सकल ब्रह्म स्वयमेव रे।

[आनंदघन

७. जो राम है, वही रहीम है; जो करीम है, वही केशव है;
जो अल्लाह है, वही राम है—और वही सनातन सत्य है।
वेद और कुरान सब एक ही विश्वंभर की महिमा गाते हैं।
दूसरा कोई नज़र आता ही नहीं।

८. ये दो-दो जगदीश कहाँ से आगये ?
जगत् का ईश तो, भाई, एक ही है।
यह तुम्हें किसने वहम में डाल रखा है ?
जो अल्लाह है वही राम है, जो करीम है वही केशव है;
हरि कहो, चाहे हज़रत कहो—
खालिक़ तो खलक़ का एक ही है।

९. जो राम है वही खुदा है;
वही शक्ति है, और वही शिव—
फिर यह भेद-भाव का निर्माण तुमने किया कैसे ?

१०. उसे कोई राम कहे, या रहमान कहे ;
कृष्ण कहे, या महादेव कहे,
या उसे कोई पारसनाथ या ब्रह्मा कहे
हैं तो ये सब एक परब्रह्म के ही नाम !

: ३ :

"सीस देइ लै जाय"

१

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं;
सीस उतारै भुईं धरै, तब पैठै घर माहिं।

[कबीर

२

प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय;
राजा-परजा जेहि रुचै, सीस देइ लै जाय।

[कबीर

३

दीन दुनी सदकै करौं, टुक देखण दे दीदार;
तन मन भी छिन-छिन करौं, भिस्त दोजख भी वार।

[दादूदयाल

४

जो कुछ तुम हमको दिया, सो सब तुमहीं लेहु;
बिन तुम मन मानै नहीं, दरस आपणा देहु।

[दादूदयाल

५

'दादू' इसक अलाह का जो कबहूँ प्रगटै आय;
तन मन दिल अरवाह का, सब परदा जल जाय।

[दादूदयाल

६

आसिक मासुक ह्वै गया, इसक कहावै सोइ;
'दादू' उस मासूक का, अल्लहि आसिक होइ।

[दादूदयाल

: ३ :

"सीस देइ लै जाय"

१. यह कोई खाला का घर तो है नहीं;
यह तो बाबा, प्रेम का घर है।
वही सूरमा इसमें बैठने का साहस करे,
जिसने अपना सर उतारके जमीन पर रख दिया हो।

२. प्रेम न तो किसी बाग में पैदा होता है,
न किसी हाट-बाजार में बिकता है।
राजा और प्रजा यहाँ बराबर हैं—
जिसे भावे, अपना सर देकर इस रतन को बिसाह ले जाये।

३. दीन और दुनिया दोनों को ही निछावर करता हूँ,
ज़रा-सा बस अपना दीदार-रस पी लेने दो।
इस तन को और मन को भी निसार करता हूँ;
और ले, स्वर्ग का लोभ, और नरक का भय भी छोड़ देता हूँ।

४. प्यारे, जो कुछ तुमने दिया, वह सब तुम्हीं ले लो।
हमें तो बस तुम्हारा एक दीदार चाहिए।
क्या करें, बिना तुम्हें देखे यह निगोड़ा मन मानता ही नहीं।

५. अल्लाह का प्यारा प्रेम अगर कभी प्रकट हो पड़े,
तो उसी क्षण तन का, मन का, दिल का और सुरत* का
सारा पर्दा जलकर खाक हो जाये।

६. इश्क तो तब कहो—
जब कि आशिक खुद माशूक का चोला पहन ले।
और ऐसे मस्त माशूक का आशिक अल्लाह ही हो सकता है।

---

* जीवात्मा

७

भोरे-भोरे तन करै, बंदै करि कुरबाय;
मीठा कौड़ा ना लगै, 'दादू' तोहू साथ ।

[दादूदयाल

८

रात न आवै नींदड़ी, थर-थर काँपै जीव;
ना-जानूँ क्या करैगा, जालिम मेरा पीव ।

[मलूकदास

९

सब बाजे हिरदे बजैं, प्रेम पखावज तार;
मन्दिर ढूँढ़त को फिरै, मिल्यौ बजावनहार ।

[मलूकदास

१०

सब रग ताँत रबाब तन, बिरह बजावै नित्त;
और न कोई सुनि सकै, कै साईं कै चित्त ।

[कबीर

११

'धरनी' पालक परै नहीं, पिय की झलक सुहाय,
पुनि-पुनि पीवत परमरस, तबहूँ प्यास न जाय ।

[धरनीदास

१२

नैनों की करि कोठरी, पुतली पलंग बिछाय;
पलकों की चिक डारिकै, पिय को लिया रिझाय ।

[कबीर

७. वह प्रीतम प्यारा तो तुझे तब मिले,
जब तू उसके आगे अपने तन की बोटी-बोटी कुर्बान कर बाँट दे—
फिर भी वह मीठा-मीठा महबूब तुझे कडुवा न लगे।

८. सारी रात नींद नहीं पड़ती—
और, यह जी थर-थर काँपता रहता है।
न जाने, मेरा ज़ालिम प्रीतम क्या करने वाला है!

९. सारे मोहन-बाजे मेरे अन्तर में बज रहे हैं,
कभी मैं प्रेम का पखावज सुनता हूँ, और कभी बीन,
बजानेवाला तो दिल के अन्दर ही मिल गया;
बाहर के मन्दिरों में उसे कौन ढूँढ़ता फिरे!

१०. यह शरीर तो है मेरा रबाब,
और यह सारी रगें हैं उसकी तांत!
मुझ विरही के इस रबाब को और कोई नहीं सुन सकता,
इसे या तो मेरा स्वामी सुनता है या फिर यह दिल।

११. क्या करूँ, ये लोभी पलक गिरते ही नहीं,
प्रीतम की झलक इन्हें कितनी मीठी लगती है,
उस परम-रस को अघा-अघाकर बार-बार पीते हैं,
तो भी इन लोभियों की प्यास नहीं बुझती!

२१. हाँ, अपने प्रीतम को मैंने इस तरह रिझाया है—
आँखों की कोठरी सजाई; उसमें रँगीली पुतलियों का पलंग बिछाया;
और खिड़कियों पर पलकों की चिकें डाल दीं।
इस तरह मैंने अपने प्रीतम को रिझाया।

१३

बिरह सतावै मोहिं को,
जिव तड़पै मेरा;
तुम देखन की चाव है
प्रभु, मिलौ सवेरा ।
नैना तरसैं दरस कों,
पल पलक न लागै;
दरदवंत दीदार का,
निसि-बासर जागै ।
[कबीर

१४

हौं हिरनी पिय पारधी,
मारे सबद के बान;
जाहि लगी सो जानही,
और दरद नहिं जान ।
[कबीर

१५

घूँघट का पट खोल रे,
तोकों पीव मिलैंगे ।
[कबीर

१६

मैं तो वा दिन फाग मचैहौं,
जा दिन पिय मोरे द्वारे ऐहौ।
रंग वही, रँगरेजवा ओही,
सुरँग चुनरिया रँगैहौं ।
जोगिन होइके बन-बन ढूँढ़ौं,
वा ही नगरी में रहिहौं । [कबीर

१३ यह निर्दय विरह मुझे कैसा सता रहा है !
देख जाये कोई यह मेरी तालाबेली ।
स्वामी, जल्दी ही आकर दीदार-रस पिलाओ ।
कितनी तीव्र है तुम्हें देखने की लालसा !
आँखें कब से तुम्हें छूने और पीने को तरस रही हैं !
एक पल भी तो ये पलक नहीं गिरते ।
प्यारे, तेरे दीदार का दर्दी न रात सोता है, न दिन ।

१४. मैं हिरनी हूँ, और प्रीतम मेरा बहेलिया;
निर्दयी मुझे शब्द के बाण खींच-खींचकर मार रहा है ।
शब्द का बेधा हुआ ही इस दर्द को जानता है,
अनबेधा इस पीर को क्या जाने ?

१५. बावली, ज़रा तू अपने घूँघट का पर्दा तो हटा—
तुझे तेरा प्रीतम मिलेगा, और फिर मिलेगा ।

१६. मैं तो सजनि, अब उसी दिन फाग खेलूंगी,
जिस दिन मेरा प्रीतम मेरे द्वार पर आयेगा ।
वही मेरा रंग होगा, और वही मेरा रंगरेज़—
उसी के हाथ इस चूनरी को सुरँग रंग में रंगवाऊँगी ।
अभी तो जोगिन बनकर मैं उसे बन-बन ढूँढ़ती फिरती हूँ,
कब भेंट हो और कब उसकी नेह-नगरी में जा बसूँ !

१७

प्रभुजी, तुम चंदन हम पानी,
जाकी अँग-अँग बास समानी।
प्रभुजी, तुम घन बन हम मोरा,
जैसे चितवत चंद चकोरा।
प्रभुजी, तुम दीपक हम बाती,
जाकी जोति बरै दिन-राती।
प्रभुजी, तुम मोती हम धागा,
जैसे सोनहिं मिलत सुहागा।
प्रभुजी, तुम स्वामी हम दासा,
ऐसी भक्ति करै 'रैदासा'।

[रैदास

१८

एक बूँद जल कारने चातक दुख पावै,
प्रान गये सागर मिलै, पुनि काम न आवै।
प्रान जो थाके थिर नहीं, कैसे बिरमावो,
बूडि मुए नौका मिलै, कहु काहि चढ़ावो।

[सदना

१९

'कबीर' भाटी प्रेम की, बहुतक बैठे आय,
सिर सौंपै सो पीवसी, नातर पिया न जाय।

[कबीर

२०

प्रीतम को पतिया लिखूँ, जो कहुँ होय बिदेस;
तन में, मन में, नैन में, ताको कहा सँदेस?

[कबीर

२७. प्रभो तुम तो हो चन्दन, और हम हैं पानी—

तुम्हारी सुगंध हमारे अंग-अंग में समाई हुई है।

प्रभो, तुम तो श्यामघन हो और सघन वन,

और हम हैं तुम्हारे प्रेमोन्मत्त मयूर—

और तुम चन्द्र हो, और हम तुम्हारे चकोर हैं।

प्रभो, तुम तो हो दीपक, और हम हैं तुम्हारी बाती—

तुम्हारी ज्योति दिन-रात हमारे अन्तर में जला करती है।

प्रभो, तुम मोती हो, और हम हैं धागे।

तुम कंचन हो और हम सुहागा—

तुम्हारा-हमारा मिलन ऐसा एकाकार हो गया है प्रभो!

नाथ, तुम हमारे स्वामी हो, और हम तुम्हारे सेवक—

तुम्हारा यह 'रैदास' तो तुम्हें इसी भाँति भजता है।

२८. पपीहा यह एक ही बूँद के लिए तो तड़प रहा है;

प्राण छूट जाने पर समुद्र भी मिला तो किस काम का?

थकित और अस्थिर प्राणों को फिर कैसे शान्ति दोगे?

डूब मरने पर नाव भेजोगे, नाथ!

तो उस पर चढ़ाओगे किसे?

२९. प्रेम मदिरा की भट्टी पर,

लो, ये कितने लोग आ बैठे हैं!

अरे, पीयेगा तो इस हाला को वही पीवनहार—

जो अपना सर काटकर साकी को सौंप देगा।

३०. अपने प्यारे को पाती तब लिखूँ,

जब कि वह कहीं परदेस में बैठा हो।

उसे भला क्या सँदेसा भेजूँ,

जो तन में, मन में और नयनों में समाया हुआ है?

२१

इस तन का दिवला करौं, बाती मेलौं जीव;
लोहू सींचौं तेल ज्यों, कब मुख देखौं पीव!

[कबीर

२२

काया रँगन जेथिये प्यारे,
पाइये नाऊँ मजीठ;
रँगनवाला जे रँगे साहिब
ऐसा रंग न डीठ ।

[नानक

२२

हेरी, मैं तो प्रेम-दिवाणी—
मेरा दरद न जाने कोय ।
सूली ऊपर सेज हमारी
किस विध सोना होय ?
गगन-मण्डल पै सेज पिया की
किस विध मिलना होय ?

[मीराँ

२३

तुमसों राता, तुमसों माता;
तुमसों लागा रंग रे खालिक
तुमसों खेला, तुमसों मेला;
तुमसों प्रेम-सनेह रे खालिक ?
तुमसों लेखा, तुमसों देखा,
तुम ही सों रत होइके खालिक ।
खालिक मेरा, आसिक तेरा,
'दादू' अनत न जाइ रे खालिक ।

[दादूदयाल

२१ प्रीतम का वह प्यारा-प्यारा मुखड़ा कब देखने को मिलेगा ?
उसे देखने-निरखने के लिए
इस तन का तो बनाया जाये दीपक,
और उसमें जीवात्मा की जलाई जाये बत्ती—
और तेल डाला जाय हृदय के रक्त का—
फिर देखूँ उस दिये के उजाले में उस प्यारे-सलोने मुखड़े को।

२२. प्यारे, यह काया तो तब रँगी जायेगी,
जब इसे तेरा नामरूपी लाल रंग मिले।
तू जिस रंग में इस काया को रँगेगा,
वैसा रंग जगत् में कहीं नजर आने का नहीं।

२३. मैं तो प्रेम की दीवानी हूं री !
मेरे अंतर का दर्द कोई नहीं जानता।
हमारी सेज, देख, सूली के ऊपर बिछी है,
उस सेज पर सोऊं तो कैसे ?
और मेरे प्रीतम की सेज है अधर आकाश-मंडल पर—
कैसे वहाँ साजन से मेरा मिलन हो ?

२४. मेरे सरजनहार, तुम्हीं में अनुरक्त हूँ और तुम्हीं में उन्मत्त;
और रंग भी तुम्हारा लगा हुआ है।
तुम्हारे ही साथ खेलता हूँ, तुम्हींसे मिलता हूँ,
और तुम्हींसे मेरा प्रेम और स्नेह है।
लेना भी तुम्हीं से, और देना भी तुम्हींसे,
मेरे सरजनहार, तुम्हींसे मेरा अनुराग है।
मेरे खालिक, मेरे मालिक !
मैं तो एक तुम्हीं पर आशिक हूँ,
इश्क लगाने मैं और कहाँ जाऊँ ?

२५

बिरह-जलंती देखिके, साईं आये धाय;
प्रेम-बूँद से छिरकिके, जलती लई बुझाय ।

[कबीर

२६

जब लगि नैन न देखिये
परगट मिलै न आय,
एक सेज संगहि रहै,
यह दुख सह्या न जाय ।

[दादूदयाल

२७

तेरा मैं दीदार-दिवाना;
घड़ी-घड़ी तुझे देखा चाहूँ,
सुन साहिब रहिमाना ।
हुआ अलमस्त खबर नहीं तन की,
पीया प्रेम पियाला ।
ठाढ़ होऊँ तो गिर-गिर पड़ता;
तेरे रँग मतवाला ।
कौजी और निमाज न जानूँ,
ना जानूँ धरि रोजा ।
बाँग-जिकिर तब ही से बिसरी,
जब से यह दिल खोजा ।
कहै मलूक, प्रेममद पीया,
दिल ही सों दिल लाया ।
मक्का—हज्ज हिये में देखा,
पूरा मुरसिद पाया ।

[मलूकदास

२५. विरह में जलती देख कर स्वामी दौड़ आये;
और प्रेम के छींटे देकर तुरंत उसके तन की आग बुझा दी।

२६. यह दुख अब तो सहा नहीं जाता—
एक ही सेज पर एकसंग हम दोनों रहते हैं,
पर साथ रहना, न रहना बराबर है—
जबतक उसे इन आँखों से नहीं देखा,
और जबतक उससे प्रगट मिलन नहीं हुआ।

२७. मेरे मालिक, मैं तो तेरे दीदार का दीवाना हूँ;
हर घड़ी, हर पल तुझे ही देखना चाहता हूँ।
तेरा प्रेम-प्याला पीकर मैं अलमस्त हो गया हूँ,
मुझे तो अब इस तन की भी सुध नहीं रही।
खड़ा होता हूँ, तो गिर-गिर पड़ता हूँ;
तेरे प्रेमरस ने कैसा मतवाला कर दिया है मुझे!
न मैं तौजी जानता हूँ, न नमाज,
और रोज़ा रखना भी नहीं जानता।
और अजान देना तो उसी दिन से भूल गया हूँ,
जबसे इस दिल के अन्दर तुझे खोजा है।
प्रेम की मदिरा ढालकर
दिल को दिल का आशिक बना लिया है।
मक्का और हज अब अन्तर्पट में ही देखता हूँ।
कारण, मुझे पूर्ण सद्गुरु मिल गया है।

२८

आतम-नारि सुहागिनी, सुन्दरि आपु सँवारि;
पिय मिलिबे को उठि चली, चौमुख दियना बारि।

[यारी

२९

बिरहिन पिउ के कारने, ढूँढ़न बनखँड जाय;
निसि बीती पिउ ना मिल्या, रही दरद लपटाय।

[दरिया

३०

'दूलन' बिरवा प्रेम को, जामेउ जेहि घट माहिं,
पाँच पचीसौ थकित भे तेहि तरुवर की छाहिं,।

[दूलनदास

३१

ऐसे बर को क्या करूँ, जो जन्मे औ मरि जाय;
बर बरिये इक साँवरो, मेरो चुड़लो अमर हो जाय।

[मीराँ

३१

मैं बिरहन बैठी जागूँ
जगत सब सोवै री आली!

३३

और सखी मद पी-पी माती, मैं बिन पियाँ-ही माती।
प्रेम-भटी को मैं मद पीयो, छकी फिरूँ दिन-राती।

[मीराँ

२८. सदा सुहागिन जीवात्मा ने सहज सिंगार किया,
और प्रेम का दिया जलाकर चहुँ ओर प्रकाश बिखेरा,
और फिर अपने प्रीतम से मिलने को अधीर होकर चल पड़ी।

२९. प्रीतम की खोज में वह न जाने किस-किस बनखंड में गई!
सारी रात उसे खोजा—
जब न मिला, तब दर्द से लिपटके पड़ रही।

३०. जिस घट के अंदर प्रेम का वृक्ष उगा,
समझ लो, उस सुन्दर विटप की छाँह में
इन्द्रियों और तत्त्वों की सारी उछल-कूद बंद हो गई,
उस घटवासी को 'स्थितप्रज्ञता' की प्रसादी मिल गई।

३१. ऐसे वर के साथ क्यों विवाह करूँ,
जिसका जन्म होता हो, और फिर मरण ?
साँवले गोपाल को क्यों न वरूँ,
जिस वर के साथ मेरा सुहाग अमर हो जाये ?

३२. सजनि, मैं विरहिनी ही यहाँ अकेली बैठी जाग रही हूँ,
दुनिया तो सारी सुख-निंदिया सो रही है।

३३. और सखियाँ तो सब मद्य पी-पीकर मतवाली हो रही हैं,
पर मैं बिना पिये ही नशे में चूर हूँ।
मैंने प्रेम की प्याली चढ़ा ली है—
यह नशा न दिन में उतरता है, न रात में।

३४

सुरत-निरत को दिवलो जोयो,
मनसा पूरन बाती ।
अगम घाणि को तेल सिंचायो,
बाल रही दिन-राती ।

[मीराँ

३५

जोगी मत जा, मत जा, पाँव परूँ मैं तेरे ।
प्रेम-भक्ति को पैंडो ही न्यारो, हमकूँ गैल बता जा;
अगर चन्दन की चिता रचाऊँ, अपने हाथ जला जा;
जल-बल भई भस्म की ढेरी, अपने अंग लगा जा;
मीराँ कहै, प्रभु गिरधरनागर, जोति में जोति मिला जा ।

[मीराँ

३६

होय जस मोहिं ले जाय,
कि ताहि ले आवै हो ।
तेकरि होइबौं दासिया,
जे रहिया बतावै हो ।

[धरनीदास

३७

वे आनराय, मैं बाला भोली;
वे निर्मल, मैं मैली ।
वे बतरावौ, मैं बोल न जानूँ;
भेद न जानूँ सहेली ।

[दरिया

३४. मैं तो दिन-रात ऐसा दिया जलाती हूँ—
दिया तो मेरा सुरत-निरत का है,
और उसमें बत्ती है पूर्ण मनोवृत्ति की,
और तेल उसमें मैंने अगम बानी का डाल रखा है;
ऐसा दिया मैं दिन-रात जलाती हूँ।

३५. जोगी, जाता तू कहाँ है ? अरे, मत जा।
मैं तेरे पैरों पड़ती हूँ, मत जा।
प्रेम-भक्ति का निराला पंथ तू मुझे बता जा।
देख, मैं चन्दन की चिता बनाती हूँ,
मुझे इस चिता पर तू अपने हाथ से जला दे।
जलकर जब मैं भस्म हो जाऊँ,
तो उसे तू अपने शरीर में लगा लेना—
और अपनी ज्योति में मेरी सुरत की ज्योति मिला देना।
जोगी, तेरे पैर पड़ती हूँ, अभी तू मत जा।

३६. या तो कोई मुझे वहाँ ले चले,
या उस प्रीतम को ही मेरे पास ले आये।
जो मुझे उस नगरी की डगर बतायेगा,
उसकी मैं बिनमोल दासी बन जाऊँगी।

३७. तुम परम सुजान हो,
और मैं ठहरी भोली-भाली बाला;
तुम हो निर्मल, और मैं हूँ मैली।
तुम ऊँची-ऊँची बातें करते हो,
और मेरे मुँह से बोल भी नहीं निकलते।
इस प्रीति की घुंडी को मैं कैसे खोलूँ !

३८

पिय सों लागी आँखियाँ;
मन परिगा जिकिर-जँजीर ।
नैना बरजे ना रहैं;
अब ठिके जात वोहि तीर ।

[दूलनदास

३९

'बुल्ला' आसिक हो यों रब्बदा, मलामत होई लाख;
लोग काफिर-काफिर आखदे, तू आहो-आहो आख ।

[बुल्ला

४०

प्रेम-बान जोगी मारल हो,
कसकै हिया रे मोर ।
जोगिया के लाल-लाल अँखियाँ हो
जस कमल के फूल ।
हमरी सुरख चुनरिया हो,
दूनों भये इक तूल ।

[पलटूदास

४१

रोम-रोम रस पीजिये, ऐसी रसना होय;
'दादू' प्याला प्रेम का, यौं बिन तृपति न होय ।

[दादूदयाल

४२

प्रेम-पहार कठिन बिधि गढ़ा;
सो पै चढ़े जो सिर सों चढ़ा ।

[मुहम्मद जायसी

३८. ये आँखें अब प्रीतम से जा लगी हैं,
और यह चंचल मन सुमिरन की साँकल में जकड़ गया है।
बरजने पर भी ये बरजोर आँखें नहीं मानतीं,
उसी ओर बरबस खिंची जा रही हैं।

३९. प्रभु का आशिक़ तू इस तरह हो—
लाखों वचन तुझे निंदा के सुनने पड़ें,
लोग तुझे काफ़िर भी कहें,
पर तेरा यह जवाब हो :
'हाँ, मैं काफ़िर ही सही, पर हूँ उसका आशिक़।'

४०. सतगुरु ने प्रेम का ऐसा बाण खींचकर मारा,
कि अब भी हिये में कसक रहा है।
उस जोगी की अनुराग-रस से भरी लाल-लाल आँखें थीं—
ऐसी, जैसे कमल के सुन्दर फूल;
और हमारी चूनरी भी वैसी ही गहरी लाल;
उसकी आँखें, और हमारी चूनरी,
दोनों एक ही रंग में रँगी हुई हैं।

४१. यों तृप्ति होने की नहीं—
इस प्रेम-रस का पान करने के लिए तो
रोम-रोम में रसना चाहिए।
हाँ, तभी शायद यह प्रेम की प्यास बुझे।

४२. प्रेम-पर्वत की चढ़ाई विधना ने कैसी कठिन बनाई है;
इस पर सिर के बल ही कोई चढ़ सकता है।

४३

प्रीति अकेलि बेलि चढ़ि छावा;
दूसरि बेलि न सँचरै पावा।

[मुहम्मद जायसी

४४

'मुहम्मद' चिनगी प्रेम कै, सुनि महि गगन डेराय;
धनि बिरही औ धनि हिया, जहँ अस अगिनि समाय।

[मुहम्मद जायसी

४५

गिरधरलाल तो भाव का भूका;
राग कला नहिं जानत 'तुका'।

[तुकाराम

४३. प्रीति की लता तो अकेली ही चढ़ती है,
किसी दूसरी बेलि को अपने पास नहीं फैलने देती।

४४. प्रेम की एक ही चिनगारी हृदय में पड़ जाये,
तो उस आग से पृथिवी विचलित हो सकती है, और आकाश !
धन्य है वह विरही, धन्य है वह हृदय, जहाँ ऐसी आग समाई हुई है !

४५. हमारा गिरिधर गोपाल तो भाव का भूखा है;
न उसे राग से मतलब, न कला से।

: ४ :

"मन्दिर–मसजिद एक"

१

हिन्दू लागे देहरे, मूसलमान मसीति;
हम लागे एक अलख सों, सदा निरन्तर प्रीति ।

[दादूदयाल

२

ना हॅ हिन्दू-देहरा, ना तँह तुरक-मसीति;
'दादू' आपै-आप है, तहां न राह, न रीति ।

[दादूदयाल

३

आप चिणावै देहरा, जिसवा करहि जतन;
परतख परमेसुर किया, सो भानै जीवरतन ।

[दादूदयाल

४

मसीत सँवारी माणसा, तिसकूं करै सलाम;
ऐन आप पैदा किया, सो ढाहै मूसलमान ।

[मलूकदास

५

महल मियां का दिल हि में, औ मसजिद काया ।

[मलूकदास

६

मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जानि;
दसवाँ द्वारा देहरा, तामें जोति पिछानि ।

[कबीर

: ४ :

"मन्दिर-मसजिद एक"

१. हिन्दू चिपटे हैं मन्दिर से, और मुसलमान अपनी मसजिद से;
पर हमारी लगन तो उस एक अलख निरञ्जन से लगी है,
हमारी प्रीति तो सदा उसी एक प्रीतम प्रभु से है।

२. न वहाँ हिन्दू का मन्दिर है, न मुसलमान की मसजिद;
वहाँ तो बस, नग्न आत्मा-ही-आत्मा है।
वहाँ न कोई राह है, न कोई रीति।

३. मूर्ख, जिसे तूने बनाकर खड़ा किया,
उस मन्दिर की तो तू बड़े जतन से रखवाली करता है;
और जिस रतन-जैसे प्रत्यक्ष प्राणी को स्वयं प्रभु ने रचा है,
उसे मूर्ख, तू नष्ट कर रहा है!

४. मनुष्य की बनाई मसजिद को तो झुक-झुककर सलाम करता है—
और जिसे, खुद खुदा ने खड़ा किया है,
उसको अय मुसलमान, तू ढा रहा है!

५. मालिक का रंगमहल तेरे इस दिल के ही अन्दर है;
और तेरी यह काया उसकी पाक मसजिद है।

६. तेरा मन है माधव की मथुरा, और तेरा दिल है कृष्ण की द्वारिका,
और यह काया है बाबा विश्वनाथ की काशी।
निरंजन ज्योति को पहचानना है,
तो तू सहज ध्यान के दसवें द्वार को जाकर खटखटा।

७

मोको कहा ढूँढे बंदे, मैं तो तेरे पास में;
ना मैं देवल ना मैं मसजिद, ना काबे कैलास में।

[कबीर

८

तुरक मसीति देहरे हिन्दू,
दुहूँठाँ राम खुदाई।
जहाँ मसीति देहरा नाहीं,
तहँ किसकी ठकुराई ?

[कबीर

९

जो रे, खुदा मसजिद में बसत है,
और मुलक किस केरा ?
तीरथ मूरत रामनिवासा,
दुहुँ मे किनहुँ न हेरा।
पूरब दिसा हरि का बासा,
पच्छिम अल्लह-मुकामा।
दिल ही खोजि दिलै-दिल भीतर,
यहीं राम-रहमाना।

[कबीर

१०

मसजिद ही में जो अल्ला खुदा,
तो और स्थान क्या खाली पड़ा ?
चारों वक्त नमाजों के,
तो और वक्त क्या चोरों के ?
'एका' जनार्दन का बंदा,
जमीन-आसमान भरा खुदा।

[एकनाथ

७. मेरे बन्दे, मुझे तू यहाँ कहाँ खोज रहा है ?
देख, मैं तो तेरे पास ही हूँ।
न मैं मन्दिर में मिलूँगा, न मसजिद में—
और न मुझे तू काबे में पायेगा, न कैलाश में।

८. मुसल्मान अपने खुदा का ठौर मसजिद में बताते हैं;
और हिन्दुओं के राम का वास मन्दिर में सुनते हैं।
पर वहाँ किसकी मालिकी है—खुदा की या राम की,
जहाँ न मसजिद है, न मन्दिर ?
क्या वह जगह प्रभु से खाली पड़ी है ?

९. तेरे खुदा का मकान मसजिद है, तो और सारा मुल्क किसका है ?
तीर्थों में और मूर्तियों में किसने देखा कि वहाँ राम बसते हैं ?
कहते हैं, पूरब दिशा में हिन्दुओं के हरि का वास है—
और, पच्छिम तरफ़ अल्लाह का मुकाम है;
पर, ज़रा तू अपने दिल में तो खोज—
अरे, यही राम है, और यही रहमान !

१०. मसजिद के अन्दर ही अगर अल्लाह है,
तो और जगह क्या खाली ही पड़ी है ?
और अगर नमाज़ पढ़ने के चार ही वक्त हैं,
तो और सब वक़्त क्या चोरों के हैं ?
जनार्दन का बन्दा मैं ऐसा नहीं मानता—
मेरा खुदा तो क्या ज़मीन क्या आसमान, हर जगह मौजूद है।

११

हिंदू पूजै देहरा, मुसलमान महजीद;
'पलटू' पूजै बोलता, जो खाय दीद-बर-दीद।

[पलटूदास

१२

तुर्क मसीत, देहरा हिंदू, आप-आपको धाय;
अलख पुरुष घट भीतरे, ताका द्वार न पाय।

[कबीर

१३

जिन दुनिया में रचा मसीद;
झूठे रोजा, झूठी ईद,
साँच एक अल्ला का नाम,
तिस को नय-नय करो सलाम।

[कबीर

१४

यह मसीत, यह देहरा, सतगुरु दिया दिखाइ;
भीतर सेवा-बंदगी, बाहर काहे जाइ!

[दादूदयाल

१५

'बुल्ला' धर्मसाला विच धाड़वी रहंदे,
ठाकुरद्वारे ठग;
मसजिदाँ विच कोस्ती रहंदे
आशिक रहन अलग्ग।

[बुल्लेशाह

११. हिन्दू पूजते हैं अपने मन्दिर को, और मुसलमान अपनी मसजिद को,
पर मैं तो उस मानव-देवता को पूजता हूँ,
जो नज़र के सामने खाता है, और नज़र के सामने पीता है।

१२. मुसलमान तो दौड़ता है अपनी मसजिद की तरफ़,
और हिन्दू अपने मन्दिर की ओर—
किन्तु इस घट के अन्दर जो अलख पुरुष बैठा है।
उसका दरवाज़ा, हाय ! कोई नहीं खटखटाता !

१३. मत बनाओ ये ऊँची-ऊँची मसजिदें;
हाँ, रोजे, भी झूठे, और तुम्हारी ईद भी;
सच्चा तो एक उस अल्लाह का नाम है'
उसी को तुम झुक-झुक कर सलाम करो।

१४. सतगुरु ने हमें दिखा दिया कि; 'यह दिल ही मसजिद है,
और दिल ही मन्दिर है।'
अल्लाह के बन्दे, सेवा या बन्दगी तू दिल के अन्दर ही कर,
दिल का उपासनागृह छोड़कर बाहर तू कहाँ भटक रहा है !

१५. धर्मशाला में तो रहने लगे हैं डाकू,
और ठाकुरद्वारे में ठगों का गिरोह,
और मसजिद में बदमाशों की टोली।
अतः अल्लाह के आशिक अलग ही रहते हैं।

: ५ :

"बुँदहिं समुँद समान"

१

बाजत अनहद बाँसुरी तिरबेनी के तीर;
राग छतीसों होइ रहे, गरजत गगन गँभीर ।

[यारी

२

गावै सुरत-सुन्दरी बैठि सत-अस्थान;
'जन दूलन' मनमोहिनी भाख सुरंगी तान ।

[दूलनदास

३

पिय का रूप अनूप लखि, कोटिभानु-उँजियार;
'दया' सकल दुख मिटि गया, प्रगट भया सुख-सार ।

[दयाबाई

४

बिन दामिनि उँजियार अति, बिन घन परत फुहार;
मगन भया मनुवाँ तहाँ, 'दया' निहार-निहार ।

[दयाबाई

५

जगमग अन्दर में हिया, दिया न बाती तेल;
परम प्रकासक पुरुष का कहा बताऊँ खेल ।

[तुलसी साहिब

"बुंदहि समुंद समान"

१. उस अजब त्रिवेणी के तट पर
आज मेरी अनहद-बाँसरी बज रही है,
शून्य-मण्डल में गम्भीर गर्जना हो रही है—
और मैं वहाँ छत्तीसों राग-रागनियाँ सुन रहा हूँ।

२. 'सत्' के रंग-महल में बैठी
मेरी-सुरत सुन्दरी, देखो, कैसा मधुर गीत गा रही है!
सत्-नाम के अनुराग-रंग में विभोर उसकी वह तान
मन को आज कैसे मोह रही है!

३. स्वामी की अनुपम छवि देखी,
और दुख-दर्द सब दूर हो गया,
और शाश्वत सुख प्रकाश में आ गया—
कोटि-कोटि सूर्य के समान
प्रीतम के रूप का वह प्रकाश है ही ऐसा।

४. उजेला हो-हो जाता है—पर बिजली का कहीं पता नहीं।
झीनी-झीनी फुही पड़ रही हैं—पर मेह का कहीं नाम नहीं।
यह अजब रस-वर्षा देख-देख कर
मन-ही-मन मेरा मन मगन हो रहा है।

५. अंतर आखिर किस तरह जगमगा रहा है!
न कहीं दिया दिखाई देता है, न बाती, न तेल!
यह सब उस प्यारे खिलाड़ी का ही खेल है,
जिसके नूर से ये सारी आत्माएँ जगमग हो रही हैं।

६

तुम्हहिं समुँद समान, यह अचरज कासों कहौं ?
जो हेरा सो हिरान, 'मुहमद' आपुहि आपु महँ।

[जायसी

७

अब हम खूब वतन घर पाया,
ऊँचा खेड़ा सदा मेरे भाया।
बेगमपूर सहर का नाम,
फिकर अँदेस नहीं तेहि ग्राम
नहि तहँ सॉसत लानत मार।

८

तेजपुंज की सुन्दरी, तेजपुंज का कंत;
तेजपुंज की सेज पर, 'दादू' बन्या बसंत।

[दादूदयाल

९

पुहुप प्रेम बरषे सदा, हरिजन खेलैं फाग;
ऐसा कौतग देखिये, 'दादू' मोटे भाग।

[दादूदयाल

१०

रस ही में रस बरषिहै, धारा कोटि अनंत;
तहँ मन निहचल राखिये, 'दादू' सदा बसंत। [दादूदयाल

११

मस्तक मेरे पाँव धरि, मंदिर माहैं आव;
सइयाँ सोवो सेज पर, 'दादू' चंपै पाँव।

[दादूदयाल

६. यह अजीब बात किससे कहूँ !
हाँ-हाँ, एक ही बूँद में तो सारा समन्दर समाया हुआ है !
पिंड के अन्दर ही ब्रह्म और ब्रह्मांड का खेल देख जाओ न।
किंतु जो ढूँढ़ने गया, वह लापता हो गया—
अन्तर-खोजी खुद उस खेल में खो गया !

७. अब मिला हमें अपना सुन्दर देश, अपना खास घर !
खेड़ा मेरा ऊँचे पर है ।
मेरे मन को हर लिया है इस देश ने ।
इस शहर का नाम 'बेगमपुर' है ।
यहाँ कोई फ़िक्र है, न अन्देशा ।
न कोई यहाँ यातना देता है, न धिक्कार,
और न यम की मार पड़ती है ।

८. सुरत-सुन्दरी भी गजब के तेज की,
और प्रीतम भी अद्‌भुत अनुपम तेज का ।
परम तेज की सुन्दर सेज पर
बारहमासी वसन्त की यह कैसी अजब बहार है !

९. उस देश में प्रभु के प्यारे सदा ही फाग खेलते हैं;
और हमेशा वहाँ प्रेम के फूलों की वर्षा होती है ।
यह अद्‌भुत लीला कोई बड़भागी ही देख पाता है ।

१०. रसभूमि पर ही रस की वर्षा होगी—
और, कोटि-कोटि धाराओं से होगी ।
साधना तो तब है, जब वहाँ भी यह मन अचंचल रहे,
बारहमासी बसंत का रस लूटते तभी बनेगा ।

११. मेरे माथे पर पैर रखकर,
आओ, न स्वामी, मेरे हृदय-मन्दिर में ।
आओ, तुम मेरे अन्तर की सेज पर पौढ़ो,
और मैं तुम्हारे प्यारे-प्यारे चरणों को चाँपूँ ।

१२

ऐसा देश दिवाना रे लोगो !
जाय सो माता होय;
बिन मदिरा मतवारे झूमैं,
जनम-मरन दुख खोय।
कोटि चन्द्र-सूरज-उँजियारो,
रवि-ससि पहुँचत नाहीं;
बिना सीप मोती अनमोलक,
बहु दामिनि दमकाहीं।
बिन रितु फूले फूल रहत हैं,
अमरत-रस फल पागे;
पवन-गवन बिन पवन बहत है,
बिन बादर झरि लागे।
अनहद-सबद, भँवर गुंजारैं,
संख-पखावज बाजैं;
ताल-घंट-मुरली घन घोरा,
भेरि-दमामे गाजैं।
सिद्धि-गर्जना अति ही भारी,
घुँघरू-गति झनकारैं;
रंभा नृत्य करें बिन पगन्,
बिन पायल ठनकारैं।
गुरु शुकदेव करें जब किरपा
ऐसा नगर दिखावैं;
'चरनदास' वा पग के परसे
आवागवन नसावैं। [चरनदास

१२. ऐसा है वह दीवानों का देश,
वहाँ जो जाता है, वही मतवाला हो जाता है।
बिना मदिरा पिये ही वहाँ के निवासी अलमस्त झूमते हैं,
जन्म और मरण दोनों से ही वे मुक्त हैं।
करोड़ों दिव्य चन्द्र-सूर्यों का प्रकाश है वहाँ—
वहां तुम्हारे इस चन्द्र और इस सूर्य का प्रवेश नहीं।
बिना ही सीप के वहाँ अनमोल मोती निपजते हैं।
उस नभ में अनगिनती बिजलियाँ कौंधती हैं।
बिना ही ऋतु-आगम के वहाँ फूल फूले रहते हैं,
और फलों में अमृत-रस भरा रहता है।
सदा पवन के मंद-मंद झकोरे आते हैं,
यद्यपि वहाँ पवन की गति नहीं!
और बिना ही बादलों के मेह की झड़ी लगी रहती है।
भौंरे उस अगम देश को अनहद की गूँज से भर रहे हैं।
कभी शंख बज उठता है, तो कभी पखावज,
और कभी घंटों की घनघनाहट सुन पड़ती है,
तो कभी मुरली की ताल-स्वर-लहरी;
कभी दुंदुभी बजती है, कभी नगाड़े;
सिद्धियों का गर्जन भी कितना गंभीर है!
और वह नृत्य और वह घुँघरुओं की झनकार।
बिना पाँव की रंभा अप्सरा वहाँ नृत्य करती है,
और बिना ही नूपुर के ठनकार उठती है!
सतगुरु की कृपा से ही
इस मुक्ति-नगरी की झाँकी मिल सकती है।
जिसने उन चरणों का स्पर्श पा लिया,
उसका आवागमन का बंधन कट गया।

१३

मोहनमाली सहज समाना;
कोई जाणै साध सुजाना।
काया-बाड़ी माहैं माली,
तहँवा रास बनाया;
सेवक सौं स्वामी खेलन कौं
आप दया करि आया।
बाहर-भीतर सर्व निरंतर
सबमें रह्या समाई;
परगट गुप्त, गुप्त पुनि परगट,
अविगत लख्या न जाई।
ता माली की अकथ कहानी,
कहत कही नहिं आवै;
अगम अगोचर करै अनन्दा
'दादू' ये जसु गावै। [दादूदयाल

१४

प्रेम-लहर की पालकी, आतम बैसै आइ;
'दादू' खेलै पीव सौं, यह सुख कह्या न जाइ। [दादूदयाल

१५

सुन सुरत रँगीली हो, कि हरि-सा यार करौ;
छूटै विषय-विकार कि भौजल तुरत तरौ। [चरनदास

१६

नूर-सरीखा नूर है, तेज-सरीखा तेज;
जोति-सरीखी जोति है, 'दादू' खेलै सेज। [दादूदयाल

१३. कोई चतुर साधु ही इस भेद को जानता है—
    कि वह माली, वह मेरा मोहनमाली
    इस बाड़ी की हर पत्ती व हर फूल में समाया हुआ है।
    यह काया ही तो उस मोहनमाली की बाड़ी है,
    इसी के भीतर उसने अपना अद्भुत रास रचा है।
    सेवक के संग खेल खेलना था न,
    तभी तो वह दयालु स्वामी इस बाड़ी में पधारा है।

१४. प्रेमरस की लहराती पालकी पर
    मेरी सुरत-सुन्दरी आकर बैठ जाती
    और स्वामी के संग ऐसा रंग खेलती है,
    कि वह अगम सुख कहा नहीं जाता।

१५. री रँगीली जीवात्मा!
    तुझे किसी से यारी करनी ही है, तो हरि से यारी कर।
    इस यारी से विषय-विकारों के विघ्न छूट जायेंगे,
    और तू तुरंत संसार-सागर से तर जायेगी।

१६. कहो, किससे पटतर दूँ?
    वह नूर तो उसी के नूर-सा है,
    वह तेज तो उसी के तेज-सा है,
    और वह ज्योति उसी की ज्योति-जैसी है।
    अहा! रहस्य की सुख-सेज पर—
    साईं अपने नूर का कैसा सुन्दर खेल रहा है!

१७

उड़ु-उड़ु रे बिहंगम, चढ़ु अकास;
जहँ नहिं चाँद-सूर, निसि-बासर,
सदा अमरपुरी अगम-बास ।
देखै उरध अगाध निरन्तर,
हरष-सोक नहिं जम कै त्रास;
कह यारी, उहँ बधिक-फाँस नहिं,
फल पायो जगमग परकास ।

[यारी

१८

नैहरवा हमकाँ नहिं भावै ।
साईं की नगरी परम अति सुन्दर,
जहँ कोइ जाय न आवै ।
चाँद-सुरज जहँ पवन न पानी,
को रे, सँदेस पहुँचावै,
दरद यह साईं को सुनावै ।

१९

देख आई मैं तो साईं की सेजरिया,
साईं की सेजरिया, सतगुरु को डगरिया ।
सबदहिं ताला, सबदहिं कूँची,
सबद की लगी है अँजरिया;
सबद ओढ़ना, सबद बिछौना,
सबद की चटक चुनरिया ।

[दूलनदास

१७. पक्षी, तू तो उड़ता चल, और उस आकाशमंडल पर चढ़ जा—
जहाँ न चन्द्र है, न सूर्य, न रात है, न दिन—
उस अगम अमरपुरी में जो गया, सदा के लिए वहीं रम गया।
वहाँ सदा ऊँचे-ऊँचे ही वह देखता है;
और उस ऊँचाई को कौन माप सकता है?
वहाँ न हर्ष है, न शोक—न मृत्यु का ही त्रास है;
और अय विहंग, वहाँ न किसी बहेलिये का ही जाल है।
वहाँ तुझे सदा दिव्य प्रकाश के अमृतफल चखने को मिलेंगे।

१८. मुझे अब यह नैहर का रहना अच्छा नहीं लगता।
मेरे स्वामी की नगरी कितनी सुन्दर है!
जहाँ जाकर फिर कोई लौटता नहीं।
वहाँ न यह चन्द्र है, न सूर्य, न यह पवन है, न पानी।
मेरे स्वामी के पास पहुँचा दे न कोई मेरा सँदेसा—पहुँचायेगा कोई?
जाकर उसे सुनायेगा कोई मेरा यह अंतर का दर्द?

१९. हाँ, मैं अपने साजन की सेज देख आई हूँ—
सतगुरु की गहन गली मैंने आज देख ली है।
प्रेम के उस रंगमहल में शब्द का ताला लगा है;
और वह शब्द की ही कुंजी से खुलता है,
और साँकल भी वहाँ शब्द की ही है।
उस साजन-सेज पर शब्द का ही ओढ़ना है,
और शब्द का ही बिछौना।
और शब्द की ही चटकीली चूनरी पहनने को मिलती है।

२०

पिया-मिलन की आस रहौं कबलौं खरी!
ऊँचे चढ़ि नहिं जाय मनें लज्जा भरी।
पाँव नहीं ठहराय, चढूँ गिर-गिर परूँ;
फिर-फिर चढ़हुँ सम्हारि तो पग आगे धरूँ।
निपट अनारी नारि तो झीनी गैल है;
अटपट चाल तुम्हारि, मिलन कस होइहै?
अन्तरपट दे खोलि, सबद उर लाव री;
दिल बिच दास कबीर, मिलैं तोहि बावरी।

[कबीर

२१

अछै-बिरछ तरि लै बैठे हो
जहँवा धूप न छाँह हो !
चाँद न सुरज, दिवस नहिं तहँवा,
नहिं निसि, होत बिहान हो।
अमृतफल मुख चाखन दैहो,
सेज - सुगन्ध सुहाय हो;
जुग-जुग अचल अमर पद दीजै,
इतनी अरज हमार हो।

[दरिया

२०. प्रिय के मिलन की आशा में, यहाँ कबतक खड़ी रहूँ ?
ओह ! कितना ऊँचा है मेरे महबूब का महल !
वहाँ तक मैं कैसे चढ़ सकूँगी ?
मैं तो मरी अब लाज के मारे—
यहाँ तो मेरा पैर ही नहीं ठहरता, चढ़ती हूँ, और गिर-गिर पड़ती हूँ।
सँभल-सँभलकर बार-बार चढ़ती हूँ, तब कहीं पैर आगे थमता है।
और मैं पूरी अनाड़िन भी तो हूँ,
और यह प्रीतम का पथ बड़ा करारा है !
फिर यह अटपटी चाल !
ऐसे भला कैसे प्रिय से मिलन हो सकेगा ?
तू तो अब अपने अन्तर के परदे को खोल दे,
और वहाँ सतगुरु के शब्दों को पैठने दे।
पगली, तेरा प्रीतम तो तुझे तेरे दिल के महल में ही मिल जायेगा।

२१. स्वामी, तुम मुझे वहाँ ले जाकर अक्षयवृक्ष के नीचे बैठाओगे—
तुम्हारी कृपा का कुछ पार !
उस वृक्ष के नीचे न धूप होगी, न छाया।
न वहाँ चन्द्र होगा, न सूर्य, न दिन होगा, न रात।
फिर प्रभात हो तो कहाँ से ?
और तुम मुझे वहाँ 'अमृतफल' चखने को दोगे।
वहाँ सुन्दर सुवासित सेज भी होगी।
स्वामी, ऐसा 'अमरपद' इस दास को देना,
जो युग-युग अचल बना रहे—
इतनी ही हमारी विनय है, नाथ !

२२

मरहम होय सो जानै साधो,
ऐसा देस हमारा ।
वेद कतेब पार नहिं पावत,
कथन-सुनन से न्यारा;
जाति-बरन कुल-किरिया नाहीं
सन्ध्या-नियम-अचारा ।
बिन जल-बूँद परत तहँ भारी,
नहि मीठा नहिं खारा;
सुन्न-महल में नौबत बाजै,
किंगरी बीन सितारा ।
जोति जजाल ब्रह्म जहँ दरसै,
आगे अगम अपारा;
कह कबीर, वहँ रहनि हमारी;
बूझै गुरुमुख प्यारा।

[कबीर

२३

झरि लागी महलवा, गगन घहराय ।
खन गरजै, खन बिजुरी चमकै,
लहर उठै, सोभा बरनि न जाय ।
सुन्न-महल में अमृत बरसै,
प्रेम-अनन्द में साधु नहाय ।
खुली किवरियाँ, मिटी अँधियरिया,
धन सतगुरु जिन दिया है लखाय ।

[धरमदास

२२. ऐसा है हमारा वह देश—
जो अन्तर का भेदी हो, वही उसे जान सकेगा।
न वेद उसका पार पाता है, न कुरान;
कहने और सुनने से परे है वह अगम देश।
न वहाँ जात-पाँत है, न वर्ण-भेद,
न कुल है, न कोई क्रिया,
न संध्योपासन है, न कोई नियम, न आचार।
बिना ही मेह के वहाँ भारी वर्षा होती है—
वह जल न मीठा है, न खारा।
शून्य महल में वहाँ सदा नौबत बजती रहती है—
कभी किंगरी की आवाज़ आती है,
कभी वीणा की, और कभी सितार की।
और वहाँ जब ब्रह्म-दर्शन होता है,
तो यह भौतिक ज्योति चकाचौंध में पड़ जाती है।
आगे वह देश अगम-अपार है।
उसी देश के हम रहवासी हैं।
कोई गुरुमुख प्यारा संत ही उसे समझ सकता है।

२३. मेरे गगन-महल में कैसी झड़ी लग रही है आज!
और कैसा गम्भीर गर्जन हो रहा है मेरे शून्य-मण्डल में!
बीच-बीच बिजली भी चमक जाती है।
रस-वर्षा की कैसी सुन्दर लहर उठ रही है।
यह अजब शोभा कहते नहीं बनती।
मेरे गगन-महल से अमृत झर रहा है आज!
इस प्रेमानंद-प्रवाह में कोई साधु ही नहा सकता है।
कपाट खुल गये हैं, अन्धकार सब हट गया है।
सतगुरु को धन्य है, धन्य है,
जिन्होंने कि यह दिव्य दृश्य सहज में ही दिखा दिया!

२४

तू ना कर इतना भेड़ा है,
तुझ बाझों दूजा केहड़ा है;
असीं देख्या बड़ा अँधेरा है,
अपने आप नूँ दूजा आखीदा ।

[बुल्लेशाह

२५

हेरत-हेरत हे सखा, रह्या कबीर हेराइ;
बूँद समानी समुद में, सो कत हेरी जाइ
हेरत-हेरत हे सखी, सो रह्या कबीर हेराइ;
समुद समाना बूँद में, सो कत हेरया जाइ ।

[कबीर

२६

नदियों पार सजन दा ठाना,
कीजै कौल जरूरी जाना;
कुछ करले सलाह मलाहे नाल ।

[बुल्लेशाह

२७

पिया मेरा जागे मैं कैसे सोई री !
पाँच सखी मेरी सँग की सहेली,
उन रंग-रँगी, पिय-रँग न मिली,

[कबीर

२४. प्यारे, तू इतना झगड़ा मत कर,
तुझे छोड़ दूसरा हमारा कौन है ?
हम बड़े अंधेरे में पड़े हैं कि—
अपने को हम तुझसे न्यारा समझते हैं !

२५. सजनि, खोजते-खोजते मैं तो खुद ही खो गई !
समन्दर में बूँद समा गई—
उसे अब कैसे खोजा जाये !
सजनि, खोजते-खोजते मैं खुद ही खो गई !
बूँद में समन्दर समा गया—
उसे अब कैसे खोजा जाये !

२६. तेरे प्रीतम का ठौर इन नदियों से उस पार है,
उसे सौगन्ध खाकर वचन दिया है न कि—
'अवश्य आऊंगा ।'
तो अब तू सतगुरु मल्लाह से मेल कर ले ।

२७. हाय, मैं अभागिन क्यों सो गई !
मेरा प्रीतम तो जाग रहा है,
और मैं अभागिन सो गई !
मैं अपनी पाँचों (इन्द्रियाँ) सहेलियों के रंग में रँग गयी,
हाय, प्रीतम के अनुराग-रंग में अपनी अंतर-चूनरी न रँगी !

२८

राम-बान अनियारे तीर,
जाहि लागें सो जानै पीर।
तन-मन खोजौं चोट न पाऊँ,
औषधि-मूली कहाँ घसि लाऊँ।
एकहि रूप दीसै सब नारी,
ना जानौं, को पियहि पियारी।
कह कबीर, जा मस्तक भाग,
न जानूँ काहू देह सुहाग।

[कबीर

२९

बहुत दिनन में मैं प्रीतम पाये,
भाग बड़े घर-बैठे आये।
मंगलचार माहिं मन राखौं,
राम-रसायन रसना चाखौं।
मन्दिर माहिं भया उँजियारा,
लै सूती अपना पीव पियारा।
कहै कबीर, मैं कछू न कीन्हा,
सखी, सुहाग राम मोहि दीन्हा।

[कबीर

२८. मेरे राम के प्रेम-बाण कैसे पैने हैं—
इन बाणों का घायल ही इनकी पीर जानता है।
तन में खोजती हूँ, मन में खोजती हूँ,
पर चोट का कहीं पता भी नहीं चलता!
अब बताओ,
दवा किस मर्म-स्थान पर घिसकर लगाऊँ?
मुझे तो यहाँ सब नारियाँ एक ही रूप की दीखती हैं,
न जाने प्रीतम को प्यारी कौन है!
पता नहीं, यहाँ कौन भागवती है;
देखूँ, साजन का सुहाग किस सहेली को मिलता है!

२६. आज कितने दिनों बाद मैंने अपने प्रीतम को पाया।
मेरे भाग्य का कुछ पार!
घर-बैठे ही मेरा स्वामी मेरे आँगन में आ गया।
इस महामंगल में मेरा मन मगन हो रहा है;
अपने राम को प्रेम-रसायन को
अन्तर की रसना आज अतृप्त-भाव से चख रही है।
मेरे हृदय-मन्दिर में आज अजब-सा उजेला हो गया है।
और अपने प्रीतम को लेकर
(समाधि) सेज पर मैं अलमस्त सो रही हूँ।
पर इस भाग्योदय में मेरा अपना कोई प्रयत्न नहीं,
सजनि, यह सब सुहाग तो मुझे मेरे राम ने दिया है।

: ६ :

"ब्रह्म-बीज का सकल पसारा"

१

एकै बूँद, एक मल-मूतर,
एक चाम, इक गूदा;
एक जोति तें सब उतपन्ना
को बाह्मन, को शूदा ?

[कबीर

२

जब लगि ऊँच-नीच करि जाना,
ते पसुवा भूले भ्रम नाना।

[कबीर

३

तुम कत बाह्मन, हम कत शूद ?
हम कत लोहू, तुम कत दूध ?

[कबीर

४

जो तू करता बरन बिचारा,
जनमत तीन डंड अनुसारा।
जनमत शूद्र, मुये पुनि शूद्रा,
कृतिम जनेउ घालि जग धुन्धा।
जो तुम बाह्मन बाह्मनी जाये,
अवर राह ते काहे न आये ?
कारी पियरी दूहहु गाई,
तिनकर दूध देहु बिलगाई।

[कबीर

: ६ :

"ब्रह्म बीज का सकल पसारा"

१. उत्पत्ति सबकी एक ही वीर्य-बिन्दु से हुई है,
मल-मूत्र भी सबका एक-सा ही है;
चमड़ा भी वही है, और रक्त-माँस और मज्जा भी वही,
और किरणें भी ये सब ब्रह्म-ज्योति की ही हैं—
तब बोलो, यहाँ कौन तो ब्राह्मण है और कौन शूद्र ?

२. अनेक भ्रमों से ग्रस्त वे नर नहीं, नर-पशु हैं।
कौन ? जिन्हें इस ऊँच-नीच के भेद-भाव ने जकड़ रखा है !

३. बताओ, तुम ब्राह्मण क्यों, और हम शूद्र क्यों ?
हमारा रक्त लोहू है—यह सत्य है;
पर तुम्हारा रक्त क्या दूध है, बाबा ?

४. तू जन्म से ही वर्ण-भेद का विचार करता है ?
तो ये तीन ताप के दंड क्यों तेरे पीछे लग गये।
तेरा जन्म हुआ, तब तू शूद्र ही था न ?
और श्मशान भी तुझे शूद्र ही कहेगा।
तो यह कृत्रिम जनेऊ डालकर—
क्यों दुनिया में द्वन्द्व मचा रहा है ?
अच्छा ! ब्राह्मणी के गर्भ से जन्म लिया है तूने !
पर जिस रास्ते से यहाँ शूद्र आते हैं,
उसी आम रास्ते से तो ब्राह्मणदेवता ! तू भी आया है।
यह क्यों ? तू और मार्ग से क्यों नहीं आया ?
सुन, काली गाय का दूध दुह, और पीली का दुह—
दोनों को मिलाकर फिर अलगा सकेगा तू ?
बता सकेगा—कौन तो काली का है, और कौन पीली का ?

५

नाना रूप बरन इक कीन्हा,
चार बरन उहि काहु न चीन्हा।
नष्ट गये, करता नहिं चीन्हा,
नष्ट गये, अवरहिं मन दीन्हा।
नष्ट गये, जिन बेद बखाना,
बेद पढ़े पै भेद न जाना।

[कबीर

६

माटी के घट साज बनाया।
नादे-बिन्दु समाना।
घर बिनसे क्या नाम धरहिंगे,
अहमक खोज भुलाना।
एकै तुचा हाड़ मल-मूत्रा,
एक रुधिर इक गूदा;
एक बिंदु से सिस्टि कियो है,
को बाह्मन, को शूद्रा?

[कबीर

७

काजि अनेक बाह्मन होना,
मेहिरहिं का पहिरावा?
शूद्र जनम की बाइ परोसै,
तुम पाँडे क्यों खाया?

[कबीर

५. ये अनेक रूप, और ये अनेक वर्ण
एक ही सरजनहार की सब रचनाएं हैं।
किन्तु एक भी वर्ण और एक भी आकृति ने
अपने करतार को न पहचाना !
बलिहारी इस वर्ण-भेद के अहंकार को !
हाँ, द्वेष की आग से नष्ट हो जायेंगे वे—
जो एक ही पिता की संतान को भेद की दृष्टि से देखते हैं;
वे भी नष्ट हो जायेंगे—
जो एक सत्य-स्वामी को छोड़ अनेक पाखंडों में उलझे पड़े हैं;
और उन्हें भी नष्ट हो जाना है—
जो वेद तो पढ़ते हैं,
पर भेद-भाव के अन्ध-कूप में पड़े सड़ रहे हैं।

६. देखो तो भला इन मूर्खों को—
नाद-बिन्दु के रहस्य को न समझ कर,
मिट्टी के इन घड़ों के ये नाम और वर्ण स्थिर कर रहे हैं !
किन्तु नष्ट होने पर वे इनके क्या नाम रखेंगे ?
बतायें वे, हैं कहीं और भेद, कोई अन्तर ?
वही हड्डी है, वही खाल है, वही मल और वही मूत्र है,
सबका वही रक्त है, और वही मज्जा;
सारी सृष्टि की उत्पत्ति एक ही वीर्य-बिन्दु से हुई है।
फिर कौन तो यहाँ ब्राह्मण है, और कौन शूद्र ?
जाति तो सब एक ही है—और वह है 'मनुष्यजाति'।

७. ठीक, जनेऊ पहन कर तुम तो ब्राह्मण बन गये,
किन्तु पत्नी तो शूद्र ही रही, महाराज !
शूद्र के हाथ का परोसा हुआ खाकर,
पांडे जी, क्यों अपना धर्म-कर्म डुबा रहे हो।

८

कौम छतीस एक ही जाती,
ब्रह्म-बीज का सकल पसारा।
ऊँच-नीच इस विधि है लोई,
कर्म-कुकर्म कहावै सोई।

[कबीर

९

एकै पवन, एक ही पानी, एक ज्योति संसारा;
एकहि खाक गढ़े सब भाँड़े, एकहि सरजनहारा।

[गरीबदास

१०

अल्ला एक नूर उपजाया, ताकी कैसी निन्दा ?
वही नूर ते सब जग कीया, कौन भला को मन्दा।

[कबीर

११

एकै नजर निरंजना सबही घट देखै;
ऊँच-नीच अन्तर नहीं, सब एकै पेखै।

[कबीर

१२

सब घट व्यापक राम है, देही नाना भेष;
राव-रंक चंडाल घर, 'सहजो' दीपक एक।

[सहजोबाई

८. यह सारी माया ब्रह्म-बीज से ही उत्पन्न हुई है;
जाति तो सब क़ौमों की एक ही है।
हाँ, जो सुकर्म करता है, वह ऊँच है,
और जो कुकर्म करता है, वह नीच।

९. जगत् में सर्वत्र एक ही ज्योति जग रही है—
एक ही पवन से, एक ही पानी से, और एक ही मिट्टी से
एक ही कुम्हार ने इन विविध घड़ों को गढ़ा है।

१०. अल्लाह ने एक ही नूर की उत्पत्ति की,
और उसी नूर से इस सारे ख़लक़ की सृष्टि की—
अब बताओ, कौन तो यहाँ ऊँच है, और कौन नीच है?

११. वह अलख निरंजन तो एक ही दृष्टि से सब को देखता है;
उसकी दृष्टि में न कोई ऊँच है, न कोई नीच।

१२. हर घट में राम हमारा व्यापक है,
हर सूरत में उसकी झलक नज़र आती है।
राजा, रंक और चांडाल सबके घर एक ही दीपक जल रहा है।

१३

खत्री ब्राह्मन सूद्र वैस की
जाति पूछि नहिं देता दाता ।

[नानक

१४

दया-धर्म हिरदै बसै, बोलैं अमरत बैन;
तेई ऊँचे जानिए, जिनके नीचे नैन ।

[मलूकदास

१५

नीच-नीच सब तरि गये, सन्त-चरन-लौलीन
जातिहि के अभिमान ते, डूबे बहुत कुलीन ।

[तुलसी साहिब

१३. हमारा दाता देता है, तो जाति नहीं पूछता;
यह ब्राह्मण है, यह क्षत्रिय है,
यह वैश्य है, और यह शूद्र—
ऐसा भेद-भाव हमारे दाता के द्वार पर थोड़ा ही है !

१४. हिये में जिनके दया-धर्म है,
जो अमृत-जैसे बोल बोलते हैं—
और नम्रता जिनकी आँखों में बसती है,
वे ही असल में ऊँचे और ऊँच-वर्ण के हैं।

१५. जिन्हें तुम 'नीच' कहते हो
वे तो जगत् को पार कर गये।
संतों के चरणों की महिमा ही ऐसी है।
डूबे तो वे—
जो ऊँची कुलीनता के अभिमान में निमग्न थे।

: ७ :

"हिन्दू-तुरक का कर्त्ता एक"

१

दोनों भाई हाथ-पग, दोनों भाई कान;
दोनों भाई नैन हैं, हिन्दू-मुसलमान।

[दादूदयाल

२

सब हम देखा सोधिकैं, दूजा नाहीं आन;
सब की एक हि आत्मा, क्या हिन्दू-मुसलमान।

[दादूदयाल

३

वही महादेव, वही मुहम्मद
ब्रह्मा आदम कहिए;
को हिंदू, को तुर्क कहावै—
एक जमीं पर रहिए।
पढ़ें कतेब वे मुल्ला कहिए—
वेद पढ़ैं वे पाँडे;
बेगरि-बेगरि नाम धराये,
इक मटिया के भाँडे।
गहना एक कनक तें गहना;
इन महिं भाव न दूजा,
कहन-सुनन को दुइ करि थापे
सोइ नमाज सोइ पूजा।

[कबीर

: ७ :

"हिन्दू-तुरक का कर्त्ता एक"

१. हमारा राष्ट्र-शरीर ऐसा है—
एक हाथ हिंदू है, दूसरा हाथ मुसलमान;
एक पाँव हिंदू है, दूसरा पाँव मुसलमान।
दोनों भाई दोनों कान हैं;
दोनों भाई दोनों नेत्र हैं।
हमारा राष्ट्र-शरीर ऐसा है,

२. हमने अच्छी तरह शोधकर देख लिया,
हमें तो सर्वत्र एक ही आत्मा नज़र आई।
जो आत्मा हिन्दू में है, वही मुसलमान में है,
फिर यह अभेद में भेद क्यों देखते हो बाबा?

३. वही महादेव बाबा है, वही हज़रत मुहम्मद;
जो ब्रह्म है, वही आदम है।
जब एक ही ज़मीन पर सबको रहना है—
तब किसे तो हिंदू कहें, और किसे मुसलमान?
कुरान पढ़ने वाले को भले ही तुम मुल्ला कहो;
और जो वेद का पाठ करे उसे भले पंडित का नाम दे दो।
जुदा-जुदा नाम तुम भले ही इन सबके रख दो—
पर असल में, हैं तो सब एक ही मिट्टी के बर्तन!
गहने तो सब एक ही सोने के हैं—
नथनी और पायजेब के सोने में क्या कोई भेद है!
यह तो यूँ ही दुनिया में कहने-सुनने को दो नाम दे रखे हैं;
असल में नमाज़ और पूजा
एक ही भक्ति-भावना के जुदा-जुदा नाम हैं।

४

हिंदू-तुरक का साहिब एक,
कहा करै मुल्ला, कहा करै सेख। [कबीर

५

कैसे हिन्दू तुरक कहाया,
सब ही एकै द्वारे आया। [कबीर

६

दुई दूर करो, कोई सोर नहीं,
हिन्दू-तुरक कोई होर नहीं। [बुल्लेशाह

७

अल्लाह-राम छूटा भ्रम मोरा;
हिन्दू-तुरक-भेद कुछ नाहीं देखूँ दरसन तोरा।
सोई प्राण, पिंड पुनि सोई, सोई लोहू-माँसा;
सोई नैन, नासिका सोई, सहजैं कीन्ह तमासा।
स्रवणौं सबद बाजता सुनिए, जिभ्या मीठा लागै;
सोई भूख सबन को व्यापै एक जुगति सोई जागै।
सोई संध-बंध पुनि सोई, सोई सुख सोई पीरा;
सोई हस्त पाँव पुनि सोई, सोई एक सरीरा।
यह सब खेल खालिक हरि तेरा, तू ही एक कर लीन्हा;
'दादू' जुगति जानि करि ऐसी, तब यह प्राण पतीना।

[दादूदयाल

४. जो हिंदू का नाथ है वही मुसलमान का भी है;
ये मुल्ले और ये शेख़ भेद-भाव डालकर आखिर करेंगे क्या ?
५. एक हिंदू—दूसरा मुसलमान !
न जाने, ये दो नाम कैसे पड़ गये !
६. आये तो दुनिया में सब एक ही सदर दरवाजे से हैं।
बस, यह दुई भर दूर करनी है, फिर कोई झगड़ा नहीं;
हिंदू और मुसलमान में फिर कोई भेद नहीं।
७. आज मेरा वह भ्रम दूर हुआ।
अब अल्लाह और राम को मैं अभेद की दृष्टि से देखता हूँ।
मेरे लिए हिन्दू मुसलमान दोनों अब एक ही हैं—
दोनों में ही प्रभो मैं तेरा दीदार-रस पाता हूँ।
हिन्दू और मुसलमान के प्राण और पिंड में क्या कोई भेद है ?
दोनों में वही रक्त है, और वही मांस।
न आँखों में कोई अन्तर है, न नाक में।
सहज ही तूने यह अजब लीला रच डाली !
कान सबके एक-समान ही शब्द सुनते हैं,
भूख सबको एक-सी ही व्यापती है,
मीठा-खट्टा सब की जीभ को एक-सा ही लगता है।
हर घट की रचना में एक ही जुगत दिखाई देती है—
वही संधि, वही बंधन !
हाथ-पैर जैसे हिन्दू के हैं, वैसे ही मुसलमान के;
एक-से शरीर हैं सब—एक सा सुख है, एक-सा दुःख।
खालिक, धन्य है तेरा यह अजब खेल !
धन्य है कर्त्तार, तेरी यह मोहिनी लीला !
तूने यह अद्वितीय अनुपम एकाकार किया है।
तेरी यह युक्ति जानी, तभी मेरे भावों की प्रतीति हुई।

८

हिन्दू तुरक न जाणौं दोई;
साईं सब का सोई है रे, और न दूजा देखूँ कोई ।

[दादूदयाल

९

ना हम हिन्दू होहिंगे, ना हम मूसलमान ;
षट दरसन में हम नहीं हम राते रहमान ।

[दादूदयाल

१०

हिन्दू तुरक न होइबा, साहिब सेती काम ;
षट दरसन संग न जाइबा, निर्पख कहिबा राम ।

[दादूदयाल

११

कहै कबीर, चेत रे अँधू !
बोलनहारा तुरक न हिन्दू ।

[कबीर

१२

हिन्दू तुरक का कर्त्ता एक—
ताकी गति लखी न जाई ।

[कबीर

१३

अल्ला गैब सकल घट भीतर,
हिरदै लेहु बिचारी ।
हिन्दू-तुरक दुहूँ महँ एकै,
कहै 'कबीर' पुकारी ।

[कबीर

८. हिंदू और मुसलमान को मैं दो नहीं समझता;
स्वामी तो सबका वही है—कोई दूसरा मुझे दिखाई ही नहीं देता।
अभेद की दृष्टि से भेद को भला कैसे देखूँ ?

९. न हम हिन्दू बनना चाहते हैं, न मुसलमान।
और न हम तुम्हारे छह शास्त्रों के पचड़े में पड़ेंगे।
हम तो अपने रहमान प्यारे के रंग में रँगे हुए हैं।

१०. न हम हिंदू होना चाहते हैं, न मुसलमान;
और न इन छह शास्त्रों के साथ रहना चाहते हैं।
हम तो निष्पक्ष होकर अपने राम के गुण गायेंगे।

११. अरे भोंदू चेत जा, अब भी चेत जा—
क्यों नाहक हिन्दू-मुसलमान में भेद करता है ?
देख, बोलनहारी आत्मा न मुसलमान है, न हिंदू।

१२. जो हिंदू का सरजनहार है, वही मुसलमान का भी है।
धन्य है हमारा अलख निरंजन कर्त्तार !

१३. जहाँ भी देखता हूँ, अल्लाह ही हर घट में छुपा बैठा है।
वही हिंदू के अन्दर है, वही मुसलमान के अन्दर।
'कबीर' पुकार-पुकार कहता है—
"हर घट में उसी प्रीतम की परछाईं पड़ रही है।"

१४

कहहिं 'कबीर' राम रमि रहिए,
हिन्दू-तुरक न कोई ।

[कबीर

१५

कर मति सुन्नति और जनेऊ,
हिन्दू-तुरक न जाने भेऊ ।

[कबीर

१४. तुम तो राम को ही हर घट में देखो;
न कोई हिंदू है, न कोई मुसलमान—
यह रचना तो सारी राम-रहमान की है।

१५. न तू सुन्नत करा—न तू जनेऊ पहन;
फिर देखें, कौन तुझे मुसलमान कहता है,
और कौन कहता है तुझे द्विज!
यह सारा तफ़रिक़ा तो इस सुन्नत और जनेऊ ने डाल रखा है।

: ८ :

"सो ब्राह्मण जो ब्रह्म विचारै"

१

धरम कथै तहँ जीव बधै तू,
अकरम करै मेरे भाई;
जो तोहरा को ब्राह्मण कहिए,
काको कहिय कसाई।

२

अति पुनीत ऊँचे कुल कहिए,
सभा माहिं अधिकाई;
इनतें दीच्छा सब कोऊ मांगै,
हँसी आवै मोहि भाई!
पाप-करम की कथा सुनावैं,
कर्म करावैं नीचा,
बूड़त दोउ परस्पर देखा,
गहे हाथ जम खींचा।
गाय बधै तेहि तुरका कहिए
उनते वे क्या छोटे?
कहहि कबीर, सुनो हो सन्तो,
कलि के ब्राह्मन खोटे। [कबीर

३

ब्राह्मन हो गुरु जगत् का, भगवन का गुरु नाहि;
उरझि-उरझि के पचमुआ, चारहुँ वेदनि माहिं।

[कबीर

: ८ :

"सो ब्राह्मण, जो ब्रह्म विचारै"

१. अरे निर्दय जहाँ पर तू धर्म का प्रवचन करता है,
वहीं तू मूक पशुओं की बलि चढ़ाता है !
कैसा घोर कुकर्म कर रहा है तू !
तुझे हम ब्राह्मण देवता कहें !
तो फिर बता, कसाई किसे कहें ?

२. लो, ये परम पवित्र माने जाते हैं, उच्च कुलोत्पन्न कहे जाते हैं;
और सभा में भी इनकी भारी मान-प्रतिष्ठा है ।
इनसे सभी जा-जाकर मंत्र-दीक्षा लेते हैं !
पर मुझे तो भाई, इन्हें देखकर हँसी छूटती है ।
ये गीता-भागवत सुनाते हैं—
इसलिए कि लोगों के पाप कट जायें,
पर कर्म कराते हैं ये नीच-से-नीच !
हमने तो कथा-वाचक और श्रोता, दोनों को ही डूबते देखा है—
यमदूतों को उनकी गर्दन पकड़े ले जाते देखा है ।
जो गाय मारते हैं, उन्हें तो तुम मुसलमान कहते हो,
पर उनसे तुम्हारे यह ब्राह्मण क्या कुछ कम हैं ?
कितने नीचाचारी हैं ये कलियुगी ब्राह्मण !

३. ब्राह्मण जगत् का गुरु भले हो—
प्रभु के भक्तों का गुरु वह नहीं हो सकता ।
उस विद्याभिमानी को तो
चार वेदों के झाड़-झंखाड़ में ही उलझ-उलझ कर मरने दो ।

४

ब्राह्मण सो जो ब्रह्म पिछानै;
बाहर जाता भीतर आनै।
पाँचों बस करि झूठ न भाखै;
दया-जनेऊ अन्तर राखै।
आतम-विद्या पढ़ै-पढ़ावै;
परमातम में ध्यान लगावै।
काम-क्रोध-मद-लोभ न होई;
'चरणदास' कहै, ब्राह्मण सोई।

[चरणदास

५

सो ब्राह्मण, जो ब्रह्म विचारै।

[कबीर

४. हाँ ब्राह्मण वही, जो ब्रह्म को पहचानता है,
विषयों से खींचकर इन्द्रियों को जो अन्तर्मुखी कर लेता है।*
जिसने पाँचों इन्द्रियों को जीत लिया है,
जो कभी असत्य नहीं बोलता—
जिसने अन्तर में दया का जनेऊ धारण कर रखा है,
जो अध्यात्म-विद्या पढ़ता और पढ़ाता है,
और निरन्तर परमात्मा के ध्यान में निमग्न रहता है।
जो न काम के वश होता है, न क्रोध के,
मद और लोभ को जिसने हृदय से खदेड़ दिया—
'चरणदास' की दृष्टि में, वही जितेन्द्रिय पुरुष 'ब्राह्मण' है।
५. ब्राह्मण बताओ, किसे कहें?
उसे जो निरन्तर ब्रह्म का विचार करे।

---

*यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः [गीता २-५८

: ६ :

"पीर सबन की एक-सी"

१

क्या बकरी क्या गाय है, क्या अपना जाया,
सब का लोहू एक है, साहिब फरमाया।
पीर पैगम्बर औलिया सब मरने आया,
नाहक जीव न मारिये पोषन को काया।

[नानक

२

काला मुँह कर करद का, दिल से दूरि निवार
सब सूरत सुबहान की, मुल्ला मुग्ध न मार।

[दादूदयाल

३

आपन को मारै नहीं, पर को मारन जाइ;
'दादू' आपा मारे बिना, कैसे मिलै खुदाइ।

[दादूदयाल

४

पीर सबन की एक-सी, मूरख जानत नाहि;
काँटा चूभे पीर है, गला काटि को खाहिं।

[मलूकदास

: ९ :

"पीर सबन की एक-सी"

१. रक्त-माँस तो सबका एक-सा ही है,
यह हमारा नहीं, खुद स्रष्टा का कथन है,
बकरी हो या गाय, या अपनी संतान ही क्यों न हो,
रक्त-माँस तो सबका एक ही है ।
पीर और पैगम्बर और औलिये सब मरने को ही यहाँ आये हैं,
फिर इस देह का पोषण करने के लिए,
जो खुद मर्त्य है, क्षणजीवी है,
क्या किसी प्राणी का व्यर्थ वध किया जाये ?

२. मुल्ला, कालिख पोत दे इस खूनी छुरी पर,
दिल से निकाल दे ज़िबह करने का काला ख़याल ।
ये सारी सलोनी सूरतें अल्लाह की ही तो हैं—
मुल्ला, क्यों ग़रीब प्राणियों को ज़िबह कर रहा है ?

३. मूर्ख, अपनी खुदी का तो खून करता नहीं,
दूसरों का वध करने चला है !
बगैर खुदी को ज़िबह किये भला खुदा कभी मिल सकता है ?

४. मूर्ख, तू समझता नहीं ?
पीर तो सबको एक-सी ही होती है;
पाँव में तेरे काँटा कभी चुभा है, पीड़ा कभी हुई है ?
फिर भी तू गरीब प्राणियों की गरदन पर छुरी चलाता है !

५

कुंजर चींटी पसु नर, सब में साहिब एक;
काटै गला खुदाय का, करै सूरमा लेख।

[मलूकदास

६

सब में एक खुदा ही कहत हो,
तो क्यों मुरगी मारो ?

[कबीर

७

जिव मति मारो बापुरा, सब का एकै प्रान;
हत्या कबहुँ न छूटिहै, कोटिन सुने पुरान।

[कबीर

८

तिलभरि मच्छी खाइकै, कोटि गऊ करि दान;
कासी करवत लै मरै, तो भी नरक निदान।

[कबीर

९

पढ़िकै शास्त्र जीव-वध करई,
मूँडि काटि अगमन के धरई।

[कबीर

१०

खुश खाना है खीचड़ी, पड़ा हुआ टुक नौन;
मांस पराया खाइकै, गला कटावै कौन।

[कबीर

५. हाथी में, चींटी में, पशु में और मनुष्य में—
सब में एक ही आत्मा है, एक ही परमात्मा है।
खुदा के गले पर छुरी फेरता है,
और तिस पर शूरमाओं में अपनी गिनती कराता है!

६. अगर कहते हो कि सबके अन्दर ही खुदा है,
तो फिर इस ग़रीब मुर्ग़ी को क्यों जिबह करते हो?

७. क्यों मारते हो किसी ग़रीब जीव को—
जान जब सब की एक-सी ही है?
भले ही तुम करोड़ों बार वेद पुराण सुनो,
जीव-हत्या के पाप से मुक्त होने के नहीं।

८. माना कि तूने करोड़ों गायों का दान किया है,
और काशी में 'करवत' लेकर मरने का भी तेरा संकल्प है;
पर तू नरक-वास से बचने वाला नहीं।
ठीक, तूने मछली का मांस रत्ती भर ही खाया है,
पर दण्ड तो तुझे पूरा ही भोगना पड़ेगा।

९. शास्त्र पढ़-पढ़ कर तू जीवों का वध करता है!
पशुओं के सिर काट-काटकर निर्जीव मूर्त्तियों के आगे चढ़ाता।

१०. खाना तो संतोष का खिचड़ी का है—
जिसमें, बस, ज़रा-सा नमक पड़ा हो;
दूसरों का माँस खा-खाकर,
क़यामत के दिन भला कौन अपना गला कटायेगा?

११

जस मांस पसु का तस मांस नर का
रुधिर-रुधिर इकसारा;
पसु का मांस भखै सब कोई,
नरहि न भखै सियारा।
ब्रह्म कुलाल मेदिनी भइया,
उपजि बिनसि कित गइया;
मांस-मछरिया तौपै खइये,
जौ खेतन में बोइया।
माटी के करि देवी-देवा,
काटि-काटि जिव देइया;
जो तुहरा है साँचा देवा,
खेत चरत क्यों न लेइया!
कहत कबीर, सुनहु हो संतो,
राम नाम निज लेइया;
जो किछु कियहु जीभ के स्वारथ,
बदल पराया देइया

[कबीर

१२

हिन्दू की दया, मेहर तुरकन की
दूनों घट सों त्यागी;
वै हलाल, वै झटका मारैं,
आग दूनों घर लागी।

[कबीर

११. रक्त-माँस तो सब का एकसार ही है,
जैसा पशु का माँस, वैसा ही मनुष्य का माँस।
किन्तु मनुष्य का माँस तो चाव से सियार भी नहीं खाता;
ऐसा निरुपयोगी है नर का माँस।
उसके पोषण के लिए पशुओं का माँस खाते हैं
रसना के दास ये मूढ़ मानव!
उस कुशल-कुम्भकार ने पृथिवी पर असंख्य घटों को सरजा;
क्यों न उत्पत्ति के साथ ही उनका विनाश हो गया?
माँस-मछली तुम्हारे खेत की उपज हैं क्या?
तब अवश्य तुम अपना बोया धान्य काटकर खा सकते हो।
तुमने मिट्टी की देवी बनाई, और मिट्टी का देव—
और लगे उन्हें सच्चे जीवों की बलि देने!
तुम्हारे बनाये देवी-देवता सत्य हैं,
तो वे खेत में चरते पशुओं को खुद पकड़कर खा जायें।
राम का भजन करो, जीभ की गुलामी छोड़ो।
उस दिन की भी कुछ खबर है तुम्हें?
वहाँ गरदन के बदले गरदन देनी पड़ेगी।
[हिंसा जननी है; प्रतिहिंसा उसकी पुत्री]

१२. हिन्दू ने दया छोड़ दी, मुसलमान ने मेहर;
दोनों ही घट आज खाली पड़े हैं!
पशु-हत्या को एक कहता है 'हलाल' और दूसरा 'झटका'—
मगर आग तो दोनों ही दुनियों के घरों में लगी है!

१३

बरबस आनिकै गाय पछारी—
गला काटि जिव आपु लिया।
जीयत ही मुरदा करि डारा,
तिसको कहत 'हलाल हुआ!'
जाहि मांस को पाक कहत हो
ताकी उतपति सुनु भाई!
रज-बीरज सों मांस उपाना,
मांस नपाकी तुम खाई।
अपनी देखि करत नहिं अहमक,
कहत, 'हमारे बड़न किया।'
उसका खून तुम्हारी गरदन,
जिन तुमको उपदेस दिया।

[कबीर

१४

मक्का मदिना द्वारका, बद्री औ केदार;
बिना दया सब झूठ है, कहै मलूक बिचार।

[मलूकदास

१५

माँस-माँस सब एक है, मुरगी हिरनी गायँ;
आँख देखि जे खात हैं, ते नर नरकहिं जायँ।

[कबीर

१६

मुरगी मुल्ला से कहै, जिबह करत है मोहिं;
साहिब लेखा माँगसी संकट परिहै तोहिं।

[कबीर

१३. अहमक, तेरी नादानी का कुछ पार !
गाय को बरबस पकड़ कर पछाड़ दिया,
और उसकी गरदन पर चट से छुरी फेर दी;
और फिर जीवित को मृतक करके कहता क्या है—
'अब यह हलाल हुआ !'
जिस माँस को तू पाक कहता है ।
उसकी उत्पत्ति भी जानता है ?
रज-वीर्य से उत्पन्न अपवित्र माँस है वह !
नादान, नापाक चीज़ को पाक बता रहा है !
कहता क्या है—'हमारे बुजुर्गों ने चलाया है' ।
जिसने तुझे यह माँस-भक्षण का उपदेश दिया
उसका भी एक दिन खून होगा—
और तेरी मोटी गरदन पर तो छुरी चलेगी ही ।

१४. तेरा दिल दया से अगर खाली है, तो—
तेरा मक्का भी झूठा, और मदीना भी झूठा;
और तेरा बदरी-केदार जाना भी बेकार ।

१५. मास तो सबका एक-सा ही है—
चाहे वह मुर्गी का हो, चाहे हिरनी का, चाहे गाय का;
माँस-भक्षी को अवश्य एक दिन नरक-यात्रा करनी पड़ेगी ।

१६. मुल्ला, मुझ ग़रीब मुर्गी को तू आज भले ही जिबह कर,
मगर उस दिन की भी तुझे कुछ खबर है ?
मालिक जब कर्मों का हिसाब माँगेगा,
तू आफ़त में पड़ जायेगा ।

१७

हिन्दू के दाया नहीं, मेहर तुरक के नाहिं;
कह 'कबीर' दोनों गये, लख चौरासी माहिं।

[कबीर

१८

रोजा तुरक नमाज गुजारै;
बिसमिल बाँग पुकारै;
उनकी भिस्त कहाँ ते होइहै,
साँझै मुरगी मारै?

[कबीर

१९

ऐसा मुरसिद कबहुँ न करिये,
खून करावै तिसतें डरिये।

[मलूकदास

२०

जिन्ह अस माँसू भखा पराया,
तस तिन्हकर लेइ औरन खाया।

[जायसी

२१

दयाभाव हिरदे नहीं, ज्ञान कथैं बेहद;
ते नर नरकहिं जाहिंगे, सुनि-सुनि साखी-सब्द

[कबीर

२२

जै फ़रमान दिवान का खसि प्यादे जे खाहिं;
बाँहीं बद्धे मारियहि मारें दे कुरखाहिं।

[नानक

१७. दया हिन्दू के हृदय में नहीं, मेहर मुसलमान के दिल में नहीं;
तब तो इन दोनों को ही
चौरासी लाख योनियों की सैर करनी पड़ेगी!

१८. रोज़ा भी रखते हैं, नमाज़ भी पढ़ते हैं।
ज़ोर-ज़ोर से अज़ान भी लगाते हैं।
और शाम होते ही मुर्गी ज़िबह करते हैं।
ऐसों को स्वर्ग भला कभी नसीब हो सकता है?

१९. न, ऐसे को कभी मार्ग-दर्शक न बनाओ,
उससे बाबा, दूर ही रहो—
जो जीव-हत्या की तरफ़ तुम्हें प्रेरित करता है।

२०. जिन्होंने पराये माँस का भक्षण किया,
उनका माँस आज दूसरे चीथ-चीथकर खा रहे हैं।

२१. साखियां और शब्द सुन-सुनकर भी
वे मनुष्य नरक जायेंगे—
जिनका हृदय दया-भाव से सूना है।
क्यों होता है ज्ञान का बेहद निरूपण करने से?

२२. दीवान के हुक्म से ये प्यादे
बकरे मार-मारकर खा रहे हैं।
ऐसों की मुश्कें बाँधी जायेंगी,
और ऊपर से यमदूतों की मार पड़ेगी,
उस दिन ये ज़ालिम ज़ोर-ज़ोर से चिल्लायेंगे।

२३

जिन पर-आतम चीन्हिया, ते ही उतरे पार ।

[मलूकदास

२४

जे दुखिया संसार में, खोवो तिनका दुक्ख,
दलिद्दर सौंप मलूक को, लोगन दीजै सुक्ख ।

[मलूकदास

२५

काहे को दुख दीजिए, घट-घट आतमराम,
'दादू' सब संतोषिए, यह साधू का काम ।

[दादूदयाल

२६

काहे को दुख दीजिए, साईं हैं सब माहिं,
'दादू' एकै आतमा, दूजा कोई नाहिं ।

[दादूदयाल

२७

ज्यों आपै देखै आपको, यों जे दूसर होइ,
तो 'दादू' दूसर नहीं, दुःख न पावै कोइ ।

[दादूदयाल

२३. जिन्होंने दूसरों की आत्मा को पहचान लिया,
समझ लो, वे संसार-समुद्र से पार उतर गये।

२४. दुनिया में जो भी प्राणी दुखी मिलें,
उनका दुःख दूर कर दो।
दुनिया भर की दरिद्रता, लाओ, मुझे सौंप दो,
और सारा सुख जगत् में बाँट दो।

२५. जब सर्वत्र सब में तेरी ही आत्मा समाई हुई है,
तेरा ही राम हर घट में बस रहा है,
तब अपनी ही तरह सबको संतोष ही देना चाहिए
साधुजनों का कर्तव्य ही यही है।

२६. तेरा प्यारा प्रभु ही सब में रम रहा है,
तो फिर क्यों किसी को दुःख देता है ?
सब प्राणियों के अन्दर एक ही आत्मा का वास है,
दूसरा तो जगत् में कोई है ही नहीं।

२७. जिस आँख से मनुष्य अपने-आपको देखता है,
उसी आँख से यदि वह दूसरों को देखने लगे,
तो दूसरा कोई दृष्टि में आयेगा ही नहीं,
और न कोई किसी को दुःख देगा।

: १० :

"सो दरवेश खुदा का प्यारा"

१

सोई साधु-सिरोमनी गोविंद-गुन गावै,
राम भजै, विषया तजै, आपा न जनावै।
मिथ्या मुख बोलै नहीं, परनिंदा नाहीं;
औगुन छाँड़ै, गुन गहै मन हरिपद माहीं।
निर्बैरी सब आतमा, परआतम जानै;
सुखदायी, समता गहै, आपा नहिं आनै।
आपा-पर-अन्तर नहीं, निर्मल निज सारा;
सतवादी साँचा कहै, लौलीन बिचारा।
निर्भय भजि न्यारा रहै, काहू लिपत न होई;
'दादू' सब संसार में ऐसा जन कोई।

[दादूदयाल

: १० :

"सो दरवेश खुदा का प्यारा"

१. साधुओं में वही सिरमौर है,—
जो सदा गोविन्द का गुण-गान करता है,
राम को भजता है, विषयों को त्याग देता है,
अहंकार का जिसने दमन कर दिया है,
जो कभी असत्य नहीं बोलता,
दूसरों की निंदा नहीं करता,
दूसरों के दोषों पर जिसकी दृष्टि नहीं जाती,
जो केवल गुणों को ग्रहण करता है,
और जिसका मन सदा हरि के चरणों में बसता है,
वही साधु-शिरोमणि है।
जिसका किसी भी जीव के प्रति वैरभाव नहीं,
दूसरों की आत्मा को जो अपनी ही आत्मा के समान जानता है,
सबको सुख पहुँचाता है,
जो सर्वत्र समदृष्टि रखता है,
अहंता को जो बिल्कुल भूल गया है,
'स्व' और 'पर' में जो भेद-दृष्टि नहीं रखता,
और जिसने अपने को सर्वथा विकार-रहित कर लिया है,
जो सदा सत्य बोलता है,
आत्म-विचार में जो निरन्तर निमग्न रहता है,
वही साधु-शिरोमणि है,
जो सर्वत्र भय-रहित है,
जो किसी विषय-सुख में आसक्त नहीं होता,
ऐसा संत संसार में कोई बिरला ही मिलेगा।

२

दरदमंद दरवेश कहावै,
जो मोहि राम की रीझ बतावै।
साहेब की लौ बैठे लाई,
काहू सों नहिं करै लमाई।
पाँच तत्त्व से रहै नियारा,
सो दरवेश खुदा का प्यारा।
जो प्यासे को देवै पानी,
बड़ी बंदगी मोहमद मानी।
जो भूखे को अन्न खिलावै,
सो शिताब साहेब को पावै।
जो फ़कीर ऐसा कोई होय,
फिरै बेबाक, न पूछै कोय।
छोड़ै गुस्सा, जीवत मरै,
तेहि इज़रायल सिजदा करै।
अपना-सा जी सबका जानै,
'दास मलूका' ताको मानै।

[मलूकदास

३

'मलुका' सोई पीर है, जो जानै परपीर;
जो परपीर न जानही, सो काफ़िर बेपीर।

[मलूकदास

२. दरवेश उसीको कहना चाहिए,—
जो साईं से मिलने की खातिर
अन्तर के दर्द पर आशिक़ हो गया है।
जो मुझे बताता है कि,
राम इस तरह रीझता है।
जो प्रभु से लौ लगाकर बैठ जाता है,
और किसी पर कभी क्रोध नहीं करता।
जो पाँचों तत्त्वों से अपने को अलिप्त रखता है,
उसी दर्दमंद दरवेश को अल्लाह प्यार करता है।
जो प्यासों को प्यार से पानी पिलाता है,
—मुहम्मद ने जिसे खुदा की बहुत बड़ी बंदगी कहा है—
और जो भूखों को रोज़ खाना खिलाता है,
उस दरवेश की भेंट स्वामी से शीघ्र हो जाती है।
जिस फ़क़ीर ने प्रभु के विरह में
अपने कर्मों का लेखा-जोखा बेबाक़ कर दिया है,
उसे कौन है स्वामी के द्वार पर रोकने-टोकनेवाला?
जिसने क्रोध का परित्याग कर दिया,
जिसने जीते जी अपनी अहंता को मार डाला,
—जो 'मरजीवा' हो गया है—
उसकी वन्दना तो इज़राइल-जैसे देवदूत भी करते हैं,
जो दूसरों के दुःख को अपना ही दुःख समझता है,
मैं तो उसीको सच्चा दरवेश मानता हूँ।

२. वही सच्चा पीर है, वही पूरा सिद्ध है
जो दूसरों की पीर को समझता है।
जिसे दूसरे की पीर का पता नहीं,
वह नामधारी पीर तो काफ़िर है।

४

निरभै भज न्यारा रहै, काहू लिपत न होई;
'दादू' सब संसार में, ऐसा जन कोई। [दादूदयाल

५

जैसी कहै करै पुनि तैसी, राग द्वेष निरुवारै;
तामें घटै बढ़ै रतियौ नहि, यहि विधि आप सँभारै।

[कबीर

६

जो नर दुख में दुख नहि मानै
सुख सनेह अरु भय नहिं जाके,
कंचन-माटी जानै।
नहि निन्दा नहिं अस्तुति जाके,
लोभ-मोह-अभिमाना;
हर्ष-शोक तें रहै नियारो,
नाहिं मान-अभिमाना।
आसा-मनसा सकल त्यागिकै
जग तें रहै निरासा
काम-क्रोध जेहिं परसै नाहिंन,
तेहिं घट ब्रह्मनिवासा।
गुरु-किरपा जेहिं नर पै कीन्ही,
तिन यह जुगति पिछानी;
"नानक' लीन भयो गोविंद सों,
ज्यों पानी सँग पानी।

[नानक

४. जो निर्भय हो प्रभु का भजन करता है,
सदा-सर्वत्र अनासक्त रहता है,
ऐसा भगवज्जन संसार में कोई बिरला ही मिलेगा।

५. जैसा कहता है वैसा ही जो करता है,
जो राग और द्वेष से सुलझ गया है,
एक रत्ती न जो घटता है, न बढ़ता है,
सदा-सर्वदा एकरस रहता है,
और इस प्रकार जो अपने-आपको 'स्ववश' में रहता है,
वही सच्चा साधु है।

६. जो मनुष्य दुःख को दुःख नहीं समझता,
जो सुख और स्नेह के वश नहीं होता,
जिसे कहीं कोई भय नहीं,
सोना और मिट्टी का ढेला जिसकी दृष्टि में समान है,
वही सच्चा साधु है।
जिसे न निन्दा से दुःख होता है, न स्तुति से सुख,
लोभ, मोह और अभिमान जिसके पास नहीं फटकते,
हर्ष और शोक से जो अलिप्त रहता है,
मान-अपमान में जो भेद नहीं देखता,
वही सच्चा सन्त है।
सारी आशाओं और इच्छाओं का जिसने त्याग कर दिया है,
जो जगत् से निरीह हो गया है,
काम और क्रोध जिसे छूते भी नहीं,
'ब्रह्म का निवास' उसी गुणातीत के हृदय में है।
साधना की इस युक्ति का परिचय उसी को मिला,
जिस पर कि गुरुदेव ने अनुग्रह किया;
वह सन्त गोविन्द के चरणों में इस तरह लवलीन हो जायेगा,
जैसे पानी पानी में एकरस हो जाता है।

७

हरि भज साफल जीवना, पर-उपकार समाइ;
'दादू' मरना तहँ भला, जहँ पसु-पंखी खाइ।

[दादूदयाल

८

करनी हिंदू-तुरक की अपनी-अपनी ठौर;
दुहुँ बिच मारग साध का, संतों की रह और: [दादूदयाल

६

भजन तें उत्तम नाम फ़कीर;
छमा सील संतोष सरलचित,
दरदवंत परपीर।

[भीखा

१०

परधन परदारा परिहरि,
ताके निकट बसै नरहरी। [नामदेव

११

दरिया लच्छन साधु का, क्या गिरही क्या भेख;
निष्कपटी निरपच्छ रहि, बाहर-भीतर एक।

[दरिया

१२

साधु सँतोषी सर्वदा, निर्मल वाके बैन;
वाके दरस रु परस तें, जिय उपजै सुख-चैन।

[कबीर

७. जीवन सफल तो तब है,
कि जबतक जीवित रहे, हरि का भजन करता रहे,
और परोपकार में अपने मन को पिरो दे;
और जब मरे तो ऐसी जगह मरे,
कि किसी को पता भी न चले;
शरीर पशु-पक्षियों के खाने के काम आ जाये।

८. हिंदू की करनी एक ओर है, मुसलमान की दूसरी ओर;
किंतु साधु का मार्ग तो दोनों के बीच में है,
सन्तों की तो, बाबा, राह ही निराली है।

९. 'फकीर' नाम की श्रेष्ठता तो केवल भजन के कारण है;
मगर फकीर कैसा?
जो क्षमाशील हो, संतोषी हो सरलचित्त हो,
जो दूसरों के दुख-दर्द को जानता हो,
दूसरों की पीर को पहचानता हो।

१० भगवान् उसीके पास बसते हैं,
जिसने पर-धन और पर-स्त्री का परित्याग कर दिया है।

११. चाहे गृहस्थ हों, चाहे भेषधारी साधु—
जिसके दिल में कपट नहीं, पक्षपात नहीं,
बाहर और भीतर जिसका एकरूप है,
वही सच्चा संत है।

१२ जिसकी आत्मा में सदा सन्तोष-ही-सन्तोष है,
जिसके वचन निर्मल निर्विकार हैं,
वही सच्चा साधु है।
उसका दर्शन और स्पर्श करते ही
हृदय में आनन्द का स्रोत उमड़ पड़ता है।

१३

ऐसा साधू कर्म दहै;
अपना राम कबहुँ नहिं बिसर,
बुरी-भली सब सीस सहै।
हस्ति चलै भूँसै बहु कूकर,
ताका औगुन उर न गहै;
वाकी कबहूँ मन नहिं आनै,
निराकार की ओट रहै।
'दरिया' राम भजै जो साधू
जगत् भेष-उपहास करै;
वाका दोष न अंतर आनै,
चढ़ नाम-जहाज भवसिंधु तरै।

[दरिया

१४

विष का अमृत कर लिया, पावक का पाणी;
बाँका सूधा कर लिया, सो साध बिनाणी।

[दादूदयाल

१५

भेष फकीरी जे करैं, मन नहिं आवै हाथ;
दिल फकीर जे हो रहै, साहिब तिनके साथ।

[मलूकदास

१६

साधु सूर सोहैं मैदाना;
उनको नाहीं गोर मसाना।

[दादूदयाल

१३ कर्मों को ऐसा ही साधु जला सकता है—
जो अपने आत्माराम को एक पल भी नहीं भूलता,
दुनिया की बुराई-भलाई सब अपने सर पर ले लेता है।
जो किसी की टीका-टिप्पणी की पर्वा नहीं करता,
कुत्ता कितना ही भूँके, हाथी अपनी चाल नहीं छोड़ता—
जगत् की निन्दा पर ध्यान नहीं देता;
और ध्यान दे क्यों ?
जबकि वह निराकार नाथ की शरण ले चुका है।
जो सदा प्रभु के भजन में मगन रहता है,
वही सच्चा साधु है।
दुनिया उसके भेष पर हँसती है।
हँसा करे, उसे इसकी पर्वा नहीं;
वह जगत् की निन्दा को हृदय में स्थान ही नहीं देता।
वह तो राम-नाम के जहाज़ पर चढ़कर
संसार-समुद्र पार कर जाता है।

१४ वही परमज्ञानी साधु है, जो विष को अमृत बना लेता है,
आग (क्रोध) को पानी (अक्रोध) में परिणत कर देता है,
और जिसने कुटिल को सरल बना लिया है।

१५ फ़क़ीरी का जो सिर्फ़ बाना धारण करते हैं,
वे अपना मन क़ाबू में नहीं रख सकते।
पर जो अपने दिल को फ़क़ीरी के रँग लेते हैं,
उनके वश में तो स्वयं ईश्वर भी हो जाता है।

१६ साधु और शूरमा के लिए न क़ब्र चाहिए, न श्मशान;
इन्हें तो खुला मैदान ही शोभा देता है।

१७

परम साध है सोई जो आपा ना थपै,
मन के दोष मिटाय नाम निर्गुण जपै।
परनिंदा परनारी द्रव्य नाहीं हरै,
जिन चालन हरि दूर बीच अंतर परै।
छिन नहीं बिसरै राम ताहि निकटै तकै,
हरि-चरचा बिन और वाद नाहीं बकै।
सब जीवन निर्वैर त्याग-वैराग लै,
सब निर्भय ह्वै संत भांति काहू न भै।
काग-करम सब छांडि होय हंसा-गती,
तृष्ना आस- जलाय सोइ साधू-मती।
जगसूं रहै उदास, भोग चित ना धरै,
जब रीझै करतार दास अपना करै।

[चरनदास

१७. ऊँचा साधु उसीको समझना चाहिए,
जो अपने अन्तर में अहंता को स्थान नहीं देता,
मन के विकारों को नष्ट कर जो निर्गुण-नाम जपता है।
जो परनिंदा से दूर रहता है,
पर-स्त्री पर दृष्टि नहीं डालता,
और दूसरों के धन का अपहरण नहीं करता।
जिन कर्मों से ईश्वर और जीव के बीच अंतर पड़ता है,
उन कर्मों से जो हमेशा बचता है, वही ऊँचा साधु है।
एक क्षण भी जो हृदय से राम को नहीं भुलाता,
राम का जो सदा सामीप्य ही चाहता है;
हरि-चर्चा ही जिसका एकमात्र विषय है,
जो कभी वाद-विवाद में नहीं पड़ता;
किसी जीव के प्रति जिसके हृदय में द्वेष नहीं,
त्याग और वैराग्य ही जिसकी परमसंपत्ति है,
वही संत जगत् में निर्भय है,
उसे किसी भी प्रकार का भय नहीं।
जो कौवे⊛ के समस्त कर्मों को छोड़
हंस* की अवस्था प्राप्त कर लेता है।
जो तृष्णा और आशा में आग लगा देता है, उसीकी साधुबुद्धि है।
जो जगत् में अनासक्त होकर रहता है,
विषय-भोगों से जिसने अपना मन हटा लिया है,
उसीपर सरजनहार रीझता है,
और उसे अपना सेवक बना लेता है।

⊛ अविवेकी, विषयी

* विवेकी, जीवन्मुक्त

१८

कहै मलूक, अलख के अब हाथ बिकाना;
नाहीं खबर वजूद की, मैं फकीर दिवाना।

[मलूकदास

१६

दाया करै धरम मन राखै,
घर में रहै उदासी;
अपना-सा दुख सबका जानै,
ताहि मिलै अबिनासी।

[मलूकदास

२०

जिहिं घट दीपक राम का, तिहिं घट तिमिर न होइ;
उस उजियारे जोति के, सब जग देखै सोइ।

[दादूदयाल

२१

ग्रन्थ न बाँधे गाठड़ी, नहिं नारी सूँ नेह;
मन इन्द्री इस्थिर करै, छाँडि सकल गुण देह।

[दादूदयाल

२२

सोइ जन साधू, सिद्ध सो, सोइ सकल-सिरमौर;
जिहिं के हिरदे हरि बसै, दूजा नाहीं और।

[दादूदयाल

२३

साधू जन उस देस का, आया यहि संसार;
'दादू' उससूँ पूछिए, प्रीतम के समचार।

[दादूदयाल

१८. मैं तो अब अपने [illegible] स्वामी के हाथ बिक गया हूँ,
मुझ दीवाने फ़कीर को [illegible] बाबा,
अब अपने अस्तित्व की भी सुध नहीं।

१६. ईश्वर उसीको मिलता है, जो सबपर दया करता है,
मन में सदा धर्मभाव रखता है,
और दूसरों के दुःख को अपना-सा दुःख समझता है।

२०. जिस घट के अन्दर राम का दीपक जल रहा है,
वहाँ कभी अज्ञान-अंधकार प्रवेश नहीं करता;
उस परमज्योति के प्रकाश में
सारा जगत् दृष्टिगोचर होता रहता है।

२१. गाँठ में जो द्रव्य नहीं बाँधता, काम-वासना में जिसकी प्रीति नहीं,
मन और इंद्रियों को जिसने [illegible] कर लिया है,
और दैहिक-सुखों का परित्याग,
उसीको स्थितप्रज्ञ संत कहना चाहिए।

२२. जिसके हृदय में केवल श्रीहरि का ही वास है,
दूसरी [illegible] वस्तु के लिए स्थान ही नहीं—
वही भक्त है, वही साधु है, वही सिद्ध है,
और वही सबमें सिरमौर है।

२३. संत तो इस जगत् में उस देश से उतरा है,
जिस देश में हमारा प्रीतम प्रभु बसता है।
तो चलो, उससे अपने स्वामी के समाचार पूछें।

२४

बिषय-अलंपट सील-गुनाकर
पर दुख दुख, सुख सुख देखे पर।
सम अभूतरिपु बिमद बिरागी;।
लोभामरष हरष भय त्यागी।

कोमल चित दीनन्ह पर दाया;
मन बच क्रम मम भगति अमाया।
सबहिं मानप्रद, आपु अमानी;
भरत, प्रानसम मम ते प्रानी।

बिगतकाम मम नामपरायन;
सांति बिरति बिनयी मुदितायन।
सीतलता सरलता मयत्री;
द्विजपद-प्रीति धरम-जनयित्री।

ये सब लच्छन बसहिं जासु उर;
जानहु तात संत संतत फुर।
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं,
परुष बचन कबहूँ नहिं बोलहिं।

निंदा अस्तुति उभय सम, ममता मम पदकंज;
ते सज्जन मम प्रानप्रिय, गुनमंदिर सुखपुंज।

[तुलसी

२४. संतजन विषय-रसों से अलिप्त रहते हैं,
शील और गुणों की खान होते हैं।
उन्हें दूसरों का दुःख देखकर दुःख, और सुख देखकर सुख होता है।
सब में समभाव रखते हैं, उनका शत्रु जगत् में पैदा ही नहीं हुआ।
अभिमान तो उन्हें स्पर्श भी नहीं करता,
वैराग्य-निधि उनकी परमसंपत्ति होती है।
लोभ, क्रोध, हर्ष और भय को वे अपने पास फटकने भी नहीं देते।
हृदय उनका परमकोमल होता है,
दीनों पर वे सदा दया रखते हैं;
मन, वचन और कर्म से माया-रहित होकर
मेरी भक्ति में निरत रहते हैं;
सबको मान देते हैं, पर स्वयं मान नहीं चाहते,
[भरत से श्रीराम कहते हैं—]
ऐसे प्राणी मुझे प्राणों के समान प्रिय हैं।
निष्काम होकर वे मेरे नाम-स्मरण में लगे रहते हैं,
उन्हें शान्ति, विरक्ति, विनय और प्रसन्नता का स्थान कहना चाहिए।
शीतलता, सरलता और मैत्री उनकी जीवन-संपत्ति होती है,
ब्रह्मवेत्ताओं के चरणों में वे प्रीति रखते हैं—
क्योंकि धर्म की उत्पत्ति इसी ब्रह्म-प्रीति से होती है।
जिसमें ये सब लक्षण पाये जाते हैं,
उसे निश्चय ही सदा संत समझना चाहिए।
संत कभी शम, दम, नियम और नीति से विचलित नहीं होते,
उनके मुख से कभी कठोर वचन नहीं निकलता।
निन्दा और प्रशंसा दोनों जिनकी दृष्टि में समान हैं,
मेरे चरणों में जिनकी एकान्त ममता है,
गुणों और आनन्द की राशि ऐसे संत
मुझे प्राणों के समान प्यारे हैं।

२५

षट विकार जित अनघ अकामा;
अचल अकिंचन सुचि सुखधामा।
अमितबोध अनीह मितभोगी;
सत्य-सार कवि कोविद जोगी।

सावधान मानद मद-हीना;
धीर भगति-पथ-परम-प्रवीना।
निज गुन स्रवन सुनत सकुचाहीं;
परगुन सुनत अधिक हरषाहीं।

सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती;
सरल सुभाउ सबहिं सन प्रीती।
श्रद्धा छमा मइत्री दाया;
मुदिता मम पद प्रीति अमाया।

विरति विवेक विनय विज्ञाना;
बोध जथारथ बेद-पुराना।
दम्भ मान मद करहिं न काऊ;
भूलि न देहिं कुमारग पाऊ।

[तुलसी

२५. काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य—
इन छः मनोविकारों को जिन्होंने जीत लिया है,
पापों से विमुक्त, और कामनाओं से जो रहित हैं;
स्थिरमति, असंग्रही, पवित्रात्मा और परमसुखी,
अनंतज्ञानवान, इच्छा-विमुक्त और मिताहारी हैं;
जो सत्य को ही मूल्यतत्त्व मानते हैं,
जो शब्ददर्शी, विद्वान् और योगी हैं
वही सच्चे संत हैं; संतों के यही लक्षण हैं।
जो सतत जाग्रत रहते हैं,
दूसरों को मान देते हैं, पर स्वयं मान के इच्छुक नहीं,
जो धैर्यवान और भक्तिमार्ग के परम प्रवीण पथिक हैं।
अपनी प्रशंसा सुनकर जो संकोच करते हैं,
किन्तु दूसरों के गुणों को सुनकर हर्षित होते हैं,
उन्हीं को संत कहना चाहिए।
जो सब में समभाव रखनेवाले और स्वभाव के शीतल हैं,
जो नीति को नहीं छोड़ते, और सरलस्वभाव हैं,
और जिनका सबसे प्रेम है;
जिनके हृदय में श्रद्धा है, क्षमा है, मैत्री और आनंद की भावना है,
जो सदा भगवान् के चरणों में प्रीति रखते हैं,
और माया के बन्धनों से विमुक्त हैं,
उन्हींको संत कहना चाहिए।
जिनमें विरक्ति और विवेक है,
जो विनयी और विज्ञानी हैं,
और जिन्हें वेदों और पुराणों का यथार्थ ज्ञान है,
जो किसीसे दंभ, अभिमान और उद्धतता का बर्ताव नहीं करते,
और भूलकर भी कुमार्ग पर पैर नहीं रखते,
वही सच्चे संत हैं।

२६

बिसरि गई सब तात पराई;
जबतें साध सँगति मैं पाई।
ना कोई बैरी; नाहिं बेगाना,
सकल संग हमरी बनि आई।
जो प्रभु कीन्हों सो भल मान्यों,
एहि सुमति साधू ते पाई।
सब महँ रमि रहिया प्रभु एकहि,
पेखि-पेखि 'नानक' बिगसाई। [नानक

२७

साधु पुरुष दुखी कहै;
सुखी कहै नहिं कोय। [दादूदयाल

२८

दुख-सुख एक समान है, हरष सोक नहिं व्याप;
उपकारी निःकामता, उपजै छोह न ताप।

[कबीर

२९

निरबैरी निःकामता, स्वामी सेती नेह;
विषया ते न्यारा रहै, साधन को मत येह।

[कबीर

३०

मान-अपमान न चित धरै, औरन को सनमान;
जो कोई आसा करै, उपदेसै तेहि ज्ञान।

[कबीर

२६. बाबा, जबसे यह संतों की संगति मिली,
तबसे 'परायापन' तो अब भूल ही गया हूँ।
न अब मेरा कोई बैरी है, न कोई पराया;
मेरा तो सभी के साथ मेल बैठ जाता है।
प्रभु ने जो भी किया वह अच्छा ही किया,
यह सद्बुद्धि आज मुझे संतों से प्राप्त हुई है।
सब में मेरा ही प्यारा प्रभु रम रहा है;
सर्वत्र उसीको देख-देखकर मैं प्रफुल्लित हो रहा हूँ।

२७. साधु तो देखी हुई कहता है;
वह कभी कोई सुनी-सुनाई बात नहीं कहता।

२८. दुःख और सुख को जो समदृष्टि से देखता है,
जिसपर न हर्ष का असर होता है, न शोक का;
और जो परोपकार में निरत रहता है,
और कामनाओं से मुक्त होगया है,
क्षोभ-संताप जिसके मन में पैदा नहीं होता,
वही सच्चा साधु है।

२९. जगत् में जिसका कोई वैरी नहीं,
निष्काम बुद्धि को जिसने ग्रहण कर लिया है,
प्रभु से जिसका अटूट प्रेम है,
विषयों से जो अलिप्त रहता है,
वही सच्चा संत है; साधुओं का यही मत है।

३०. जिसके दिल पर न मान असर करता है, न अपमान,
किन्तु दूसरों को जो आदर देता है;
ज्ञान का उपदेश जो उसी को करता है,
—जो ज्ञान-प्राप्ति की आशा में रहता है—
वही सच्चा साधु है।

३१

ज्ञानी अभिमानी नहीं, सब काहू से हेत;
सत्यवान परस्वारथी, आदर-भाव सहेत।

[कबीर

३२

साध मिले साहिब मिले, अन्तर रही न रेख;
मनसा वाचा कर्मना, साधू-साहिब एक।

[कबीर

३३

हरि से जनि तू हेत कर, कर हरिजन से हेत;
मान-मुलक हरि देत हैं, हरिजन हरि हीं देत।

[कबीर

३४

सिंहों के लेहँड़े नहीं, हंसों की नहिं पाँत.
लालों की नहिं बोरियाँ, साधु न चलैं जमात।

[कबीर

३१. ज्ञानी कभी अभिमान नहीं करता,
वह सब से प्रेम रखता है,
वह सत्य का उपासक और परोपकारी होता है,
और दूसरों के लिए उसके हृदय में हमेशा आदरभाव रहता है।

३२. साधु क्या मिला,
हमें तो साधु के रूप में स्वयं ईश्वर ही मिल गया।
भेद-दृष्टि का लेश भी नहीं रहा।
मन से, वचन से और कर्म से हम अनुभव करते हैं कि
साधु और भगवान् एक ही रूप हैं।

३३. तू हरि से प्रेम मत कर,
तू तो हरिजन से प्रीति जोड़;
हरि के हाथों तू अधिक-से-अधिक
धन-संपत्ति और पृथिवी की प्रभुता ही पायेगा।
पर हरिजन तो तुझे स्वयं हरि को ही दे देंगे।

३४. सिंहों के कहीं झुंड-के-झुंड नहीं मिला करते,
न हंसों की पंक्तियाँ देखने में आती हैं,
और न लाल बोरियों में भरे बिकते हैं;
इसी तरह साधु लोग जमात बनाकर नहीं चला करते।

: ११ :

"मुसलमान, जो राखै ईमान"

१

मुसलमान, जो राखै ईमान,
साईं का मानै फरमान।
सारों को सुखदाई होइ;
मुसलमान करि जानों सोइ।
मुसलमान मेहर गहि रहै,
सबको सुख, किसकूँ नहिं दहै।
मुवा न खाइ, जीवत नहिं मारै,
करै बन्दगी, राह सँवारै।
सो मोमिन मन में करि जाणि,
सत्त सबूरी बैसे आणि।
चालै साँच, सँवारै बाट,
तिसकूँ खुले बिहिस्त के पाट।
सो मोमिन मोमदिल होई,
साईं को पहिचाणै सोई।
जोर न करै, हराम न खाइ,
सो मोमिन बिहिस्त में जाइ।

[दादूदयाल

२

तसबी फेरौं प्रेम की, दिल में करौं नमाज;
फिरौं सगल दीदार को उसी सनम के काज।

[रैदास

: ११ :

"मुसलमान, जो राखे ईमान"

१. मुसलमान तो हम उसे ही कहेंगे, जो ईमान को रखता है,
अल्लाह की आज्ञा मानता, और सबको सदा सुख पहुँचाता है।
जिसने दया का दामन पकड़ रखा है,
जो सदा शीतलता का संचार करता है,
किसीको दुःख की आग से जलाता नहीं;
जो न मुर्दार को खाता है, न जिंदा को हलाल करता है;
हर घड़ी जो अल्लाह की बन्दगी में
और अपनी आकबत बनाने में लगा रहता है,
उसीको धर्मनिष्ठ-मुसलमान समझो।
जिसने सत्य और संतोष को दिल में ऊँची जगह दे रखी है,
जो सदा सत्य-पथ पर चलता है,
लोक-परलोक के रास्ते को सँवारता रहता है,
उसके लिए तो हमेशा ही स्वर्ग का द्वार खुला हुआ है।
वह खुदा पर ईमान लानेवाला मुसलमान मोमदिल होता है,
वही अपने मालिक को पहचान सकता है।
जो न किसीपर कभी जुल्म ढाता है,
और न हराम का खाता है—
वही सच्चा मोमिन स्वर्गलोक के अंदर प्रवेश करता है।

२. प्रेम की तो मैं माला जपता हूँ,
और दिल के अंदर नमाज़ पढ़ लिया करता हूँ;
अब तो उसी प्रीतम के दर्शन के लिए
जगह-जगह की खाक छानता फिरता हूँ।

३

तीजी और नमाज न जानूँ,
ना जानूँ धरि रोजा;
बाँग-जिकर तब ही तें बिसरी
जब तें यह दिल खोजा।

[रैदास

४

जिसके इश्क आसरा नाहीं;
क्या नमाज, क्या पूजा ?

[रैदास

५

उजू पाक किया मुँह धोया,
क्या मसजिद सिर नाया।
दिल में कपट, नमाज पढ़े क्या,
क्या हज काबे आया ?

[रैदास

६

सोइ दरवेस दरस निज पावो;
सोइ मुसलिम सारा है।
आवै न जाय, मरै नहिं जीवै;
'यारी' यार हमारा है।

[यारी

३. न मुझे अपने कर्मों के चिट्ठे का पता है,
और न नमाज़ पढ़ना ही जानता हूँ।
रोज़ा क्या चीज़ है, यह भी मालूम नहीं;
और अज़ान देना तो तभी से भूल गया हूँ,
जिस दिन कि इस दिल के अंदर स्वामी को खोज लिया।

४. जिसने इश्क का दामन नहीं पकड़ा,
उसके नमाज़ पढ़ने से क्या, और पूजा करने से क्या!

५. जिसके दिल में कपट का कचरा भरा पड़ा है, उसके वज़ू करने,
और मसजिद में सौ-सौ बार सर झुकाने से क्या फायदा?
उसका नमाज़ पढ़ना बेकार है—
और काबे में जाकर हज करने से भी क्या होता है?

६. दरवेश वही—जिसने कि अपनी आत्मा का दर्शन पा लिया,
और वही सच्चा मुसलमान है।
जिसका आवागमन छूट गया है,
जो न मरता है, न जीवन-धारण करता है,
वही हमारा प्यारा मित्र है।

७

सो मुल्ला जो मनसू लरै,
अहिनिस काल-चक्र सूँ भिरै।
काल-चक्र का मरदै मान,
ता मुल्ला कूँ सदा सलाम।

[कबीर

८

सोई काजी मुल्ला सोई,
मोमिन मूसलमान।
सोई सयाना सब भला,
जो राता रहमान।

[दादूदयाल

७. मुल्ला वह, जो मन का निग्रह करने में लगा रहता है,
दिन-रात जिसकी काल-चक्र के साथ भिड़ंत रहती है,
काल-चक्र का मान जो मिट्टी में मिला देता है,
उस मुल्ला की मैं हमेशा वंदना करता हूँ।

८. जो प्रभु के रँग में रँगा हुआ है,
वही काज़ी है, वही मुल्ला,
और वही धर्मनिष्ठ मुसलमान है,
वही चतुर है, और वही जगत् में सब तरह से भला है।

: १२ :

"सो काफ़िर, जो बोलै काफ़"

१

मेहर मुहब्बत मन नहीं, दिल के बज्र कठोर;
काले काफ़िर ते कहिये, मोमिन मालिक और ।

[दादूदयाल

२

सो काफ़िर, जो बोलै काफ़,
दिल अपणा नहिं राखै साफ़ ।
साईं को पहिचानै नाहीं,
कपट-कूड़ सब उस ही माहीं ।
साईं का फ़रमान न मानै,
'कहाँ पीव' ऐसे करि जानै ।
मन आपणे में समझत नाहीं,
निरखत चलै आपणी छाहीं ।
जोर करै, मिसकीन सतावै,
दिल उसके में दरद न आवै ।
साईं सेती नाहीं नेह,
गरब करै अति अपनी देह ।
इन बातन क्यों पावै पीव,
परधन ऊपर राखै जीव ।
जोर-जुलम करि कुटुँब सूँ खाइ,
सो काफ़िर दोज़ख़ में जाइ ।

[दादूदयाल

: १२ :

"सो काफ़िर, जो बोलै काफ़"

१. जिनके दिल में न दया है, न प्रेम,
और हृदय जिनका वज्र-सा कठोर है
उन काले दिलवालों को काफ़िर ही कहना चाहिए।
अल्लाह के धर्मनिष्ठ बन्दे तो और ही हैं।

२. काफिर कौन ?
जो ईश्वर की हस्ती को असत्य ठहराता है,
और अपने दिल को जो साफ नहीं रखता।
प्रभु से जिसकी कोई पहचान नहीं,
सारा कपट-कचरा जिसके अन्दर भरा हुआ है।
जो ईश्वर की आज्ञा नहीं मानता—
कहता है, 'कहाँ है तुम्हारा ईश्वर ?'
ऐसे मनुष्य को काफ़िर ही कहना चाहिए।
जो अपने दिल में विवेक को जगह नहीं देता,
और बड़े गर्व से अपनी छाया को देख-देखकर चलता है।
जो जुल्म करता है, गरीबों को सताता है,
जिसके दिल में दीन-दुखियों के लिए दर्द नहीं,
सिरजनहार से जिसका प्रेम नहीं,
अपने नश्वर शरीर पर जो भारी गर्व करता है,
भला, इन बातों से कभी स्वामी से भेंट हो सकती है ?
दूसरे के धन पर हमेशा जिसकी नीयत रहती है,
जोर-जुल्म कर-कर जो कुटुम्ब का धन खाता है
वह काफ़िर निश्चय ही नरक-लोक की यात्रा करेगा।

: १३ :

"साधो, सहज समाधि भली"

१

तोड़ूँ न पाती, पूजूँ न देवा;
सहज समाधि करूँ हरि-सेवा। [रैदास

२

और देवल जहँ धुँधली पूजा,
देवत दृष्टि न आवे;
हमारा देवत परगट दीसै,
बोलै-चालै खावै।
जित देखौं तित ठाकुरद्वारे,
करौं जहाँ नित सेवा;
पूजा की बिधि नीके जानीं,
जासूँ परसन देवा।
करि सन्मान अस्नान कराऊँ,
चंदन नेह लगाऊँ,
मीठे बचन पुष्प जोई जानो,
ह्वै करि दीन चढ़ाऊँ।
परसन करि-करि दर्शन पाऊँ,
बारबार बलि जाऊँ,
चरनदास सुकदेव* बतावैं,
आठ पहर सुख पाऊँ। [चरनदास

---

* शुकदेव चरनदास के गुरु थे।

: १३ :

"साधो, सहज समाधि भली"

१. न चढ़ाने को मैं फूल-पत्ती तोड़ता हूँ,
न किसी देवता को पूजता हूँ,
सहज समाधि में स्थित
मैं तो सदा श्रीहरि की सेवा-बंदगी करता रहता हूँ।

२. और मंदिरों में तो धुँधली-सी पूजा दिखाती है,
वहाँ देवता ही दृष्टि नहीं आता।
पर हमारा देवता तो प्रत्यक्ष दीख रहा है,
यह अगमदेव बोलता है, चलता है,
और खाता-पीता भी है।
जहाँ भी देखता हूँ, ठाकुरद्वारे दृष्टि आते हैं
और नित्य ही वहाँ अपने देवता की सेवा-पूजा करता हूँ।
जिस पूजा से मेरा देवता प्रसन्न होता है,
उसकी विधि मैं अच्छी तरह जानता हूँ।
भक्ति-भाव से स्नान कराता हूँ,
स्नेह का चंदन लगाता हूँ,
और बड़ी नम्रता से मधुर वचनों के पुष्प
उसके चरणों पर चढ़ाता हूँ।
उसे मैं हर घड़ी प्रसन्न रखता हूँ,
और वह भी मुझे, हर क्षण दर्शन देता रहता है,
मैं बार-बार उसकी बलैयाँ लेता हूँ।
यह सहज सुख मुझे आठों पहर मिलता रहता है।

३

साधो, सहज समाधि भली ।
गुरु-प्रताप जा दिन सों जागी,
दिन-दिन अधिक चली ।
जहँ-जहँ डोलौं सो परिकरमा,
जो कछु करौं सो सेवा,
जब सोवौं तब करौं दंडवत,
पूजौं और न देवा ।
कहौं सो नाम, सुनौं सो सुमिरन,
खावौं-पिवौं सो पूजा,
गिरह-उजाड़ एकसम लेखौं,
भाव मिटावौं दूजा ।
आँख न मूँदौं, कान न रूँधौं,
तनिक कष्ट नहिं धारौं,
खुले नैन पहिचानौ हँसि-हँसि,
सुन्दर रूप निहारौं ।
सबद निरंतर से मन लागा,
मलिन बासना त्यागी,
उठत-बैठत कबहुँ नहिं छूटै,
ऐसी तारी लागी ।
कह कबीर, यह उनमुनि रहनी,
सो परगट करि गाई,
दुख-सुख से कोइ परे परमपद,
तेहि पद रहा समाई ।

[कबीर

३. बाबा, मेरी तो यह सहज समाधि ही अच्छी ।
सतगुरु का यह प्रताप ही कहना चाहिए—
जिस दिन से यह सहज अवस्था जागृत हुई,
दिन-दिन समाधिगत शांति बढ़ती ही गई ।
जहाँ-जहाँ घूमता-फिरता हूँ,
उसे मैं तीर्थ-प्रदक्षिणा मानता हूँ,
जो भी करता हूँ वह सब प्रभु-सेवा ही है ।
सोता हूँ तब मानो साष्टांग प्रणाम करता हूँ,
अपने आत्मदेव को छोड़ और किसी देवता को मैं पूजता ही नहीं
मेरे हरेक बोल में राम का नाम गूँजता है,
जो भी सुनता हूँ वह सब मेरे लिए हरि-स्मरण है,
जो खाता-पीता हूँ वह सब आत्मदेव की पूजा ही है ।
क्या बस्ती और क्या वीरान,
एक ही दृष्टि से सबको देखता हूँ,
द्वैत की सारी भावना मैंने नष्ट कर दी है ।
न अब आँखें मूँदता हूँ, न कान बन्द करता हूँ,
अपने आत्मदेव को मैं जरा भी कष्ट नहीं देता ।
खुली आँखों अपने प्रियतम को पहचान लेता हूँ
और हँस-हँसकर उसका सुन्दर मुखड़ा देखा करता हूँ ।
निरन्तर ध्वनित होनेवाले शब्द में मेरा मन रम गया है,
और विकारमूलक वासनाओं का त्याग कर दिया है ।
ऐसी सहज समाधि लग गई है कि,
उठते-बैठते कभी भंग नहीं होती ।
यह मेरी 'उन्मनी' अवस्था की स्थिति है,
इसका मैंने यह प्रत्यक्ष वर्णन किया है ।
सुख-दुःख से परे जो आत्मा का परमपद है,
उसीमें मैं अब सदा के लिये रम गया हूँ ।

४

राम, मैं पूजा कहा चढ़ाऊँ ?
फल अरु फूल अनूप न पाऊँ !
मन ही पूजा, मन ही धूप,
मन ही सेऊँ सहज सरूप।
पूजा-अरचा न जानूँ तेरी,
कह रैदास, कवन गति मेरी।

[रैदास

४. राम, मैं तुम्हारी पूजा करने तो आया हूँ,
पर तुम्हारे चरणों पर चढ़ाऊँ क्या?
मुझे अनूठे फल-फूल तो कहीं मिलते ही नहीं।
इससे अब तुम्हारी मानसी पूजा ही करूँगा,
जिसमें धूप-दीप सब मानसिक ही होगा।
मन में ही सहज स्वरूप की सेवा करूँगा।
नहीं जानता कि—
तुम्हारा पूजन-अर्चन कैसे किया जाता है।
और मेरी गति ही क्या है!

: १४ :

"बातों ही पहुँचौ नहीं"

१

कथनी मीठी खाँड-सी, करनी विष की लोय,
कथनी तजि करनी करै, विष से अमरत होय।

[कबीर

२

कथनी-बदनी छाँड़िके, करनी से चित लाय,
नरहिं नीर प्याये बिना, कबहूँ प्यास न जाय।

[कबीर

३

पानी मिलै न आपको, औरन बकसत छीर;
आपन मन निश्चल नहीं, और बँधावत धीर।

[कबीर

४

जैसी मुखते नीकसै, तैसी चालै चाल,
तेहिं सतगुर नियरे रहै, पल में करै निहाल।

[कबीर

५

मारग चलते जो गिरै, ताको नाहीं दोस;
कह 'कबीर' बैठा रहै, ता सिर करड़े कोस।

[कबीर

: १४ :

"बातों ही पहुँचौ नहीं"

१. 'कथनी' खांड की तरह मालूम देती है,
और 'करनी' ? जैसे विष की गोली !
किन्तु यह विष अमृत हो जाता है—
यदि कथनी को छोड़कर मनुष्य करनी में लग जाये।

२. कोरी कथनी से कोई लाभ नहीं,
इसे तो तू छोड़ ही दे; तू तो करनी में मन लगा।
बगैर पानी पिलाये क्या किसी की प्यास बुझी है ?

३. खुद को तो पानी भी नसीब नहीं होता,
दूसरों को दूध बख्शने चले हैं !
अपना मन तो स्थिर नहीं,
दूसरों को आप धीरज बँधा रहे हैं !

४. मुख से जैसी बात निकले,
वैसा ही यदि आचरण किया जाये,
तो उसके निकट तो सदा ही सतगुरु का निवास है,
सत्य के ऐसे उपासक को वह क्षण-मात्र में निहाल कर देता है।

५. रास्ता चलते कोई गिर पड़े,
तो उसका कोई दोष नहीं।
यात्रा तो कठिन उसके लिए है—
जो चलता ही नहीं;
बैठा-बैठा बातें बना रहा है।

६

पर-उपदेस-कुसल बहुतेरे,
जे आचरहिं ते नर न घनेरे।

[तुलसी

७

'दादू' कथनी और कुछ, करणी करै कुछ और,
तिनथें मेरा जिव डरै, जिसका ठीक न ठौर।

[दादूदयाल

८

मिसरी-मिसरी कीजिए, मुख मीठा नाही;
मीठा तब ही होइगा, छिटकावै माहीं।
बातों ही पहुँचै नहीं, घर दूरि पयाना;
मारग पंथी उठि चलै, 'दादू' सोइ सयाना।

[दादूदयाल

९

करनी बिन कथनी इसी,
ज्यों ससि बिन रजनी;
बिन साहस ज्यूँ सूरमा,
भूषन बिन सजनी।
बाँझ झुलावै पालना,
बालक नहिं माहीं;
वस्तु बिहीना जानिए,
जहँ करनी नाहीं।
बहु डिंभी करनी बिना,
कथि-कथि कर मूए;
संतों कथि करनी करी,
हरि के सम हूए।

[चरणदास

६. दूसरों को उपदेश देने में तो बहुत सारे प्रवीण हैं,
किन्तु वैसा आचरण करने वाले तो बहुत ही थोड़े हैं।

७. कहते तो कुछ हैं, और करते कुछ और ही हैं;
ऐसों से मैं बहुत डरता हूँ, जिनकी बात का कोई ठीक-ठिकाना नहीं।

८. 'मिश्री-मिश्री' कहने से
किसी का मुँह कभी मीठा हुआ है ?
अरे, मुँह तो तभी मीठा होगा,
जब उसमें मिश्री की डली डालोगे।
चलने से दूर रहकर, केवल बातों से कोई घर पहुँचा है ?
राहगीर तो वही चतुर कहा जायेगा,
जिसने चुपचाप अपना रास्ता पकड़ लिया।

९. बिना करनी के कथनी ऐसी है,
जैसे बिना चन्द्रमा के रात;
या, साहस के बिना शूरवीर,
अथवा नारी के बिना गहना।
यह तो बाँझ स्त्री का पालने में
कल्पित बालक का झुलाना हुआ !
जहां करनी ही नहीं,
वहां उद्दिष्ट वस्तु कहाँ से आयेगी ?
कितने ही दम्भी बिना करनी के
आत्म-ज्ञान का कोरा निरूपण कर-कर मर गये।
किन्तु सन्तों ने कहा और तदनुसार आचरण किया—
यही कारण है कि वे 'ब्रह्मवत्' हो गये।

१०

'दादू' निबरे नाम बिन, झूठा कथें गियान;
बैठे सिर खाली करैं, पंडित बेद पुरान।

[दादूदयाल

११

मसि कागज के आसरे, क्यों छूटै संसार:
राम बिना छूटै नहीं, 'दादू' भर्म-विकार।

[दादूदयाल

१२

करने वाले हम नहीं, कहने कूँ हम सूर:
कहिबा हम थैं निकट है, करिबा हम थैं दूर।

[दादूदयाल

१३

पद जोड़ै, साखी कहैं, विषै न छाँड़ै जीव,
पानी घालि बिलोइए, क्योंकर निकसै घीव ?

[दादूदयाल

१४

बातों तिमिर न भाजई, दीवा बाती तेल।

[मलूकदास

१५

निसि गृह-मध्य दीप की बातन्ह,
तम निवृत्त नहिं होई।

[कबीर

१०. प्रभु का नाम-स्मरण छोड़कर ये कमबख्त पंडित
वेद-पुराणों के वाद-विवादों में
बैठे-बैठे यूं ही दिमाग खाली कर रहे हैं।

११. स्याही और कागज के भरोसे,
भला जन्म-मरण से किस तरह छुटकारा मिल सकता है?
राम की शरण लिये बगैर
भ्रांतिजनित विकारों से मुक्ति मिल नहीं सकती।

१२. हमसे करनी तो कुछ होती-जाती नहीं,
हम तो कोरे कथन-शूर हैं;
हमारे नज़दीक तो कथनी ही है,
करनी तो हमसे कोसों दूर है।

१३. यह मनुष्य पद-रचना करता है,
और ज्ञान-वैराग्य की साखियाँ भी कहता है;
किंतु विषय-विष नहीं छोड़ना चाहता।
अब 'ब्रह्म-रस' मिले तो कैसे?
पानी बिलोने से कहीं घी निकलता है?

१४. दीपक, बत्ती और तेल की कथा कहने से
अन्धकार का निवारण नहीं हुआ करता।

१५. अँधेरी रात में दीये की बातें करने से
किसी के घर का अंधकार दूर नहीं हुआ।

: १५ :

"निंदक बाबा बीर हमारा"!

१

निंदक बाबा बीर हमारा;
बिनहीं कोड़ी वहै बिचारा।
कर्म कोटि के कलमष काटै,
काज संवारै बिनहीं साटै।
आपण डूबै और को तारै,
ऐसा प्रीतम पार उतारै।
जुग-जुग जीवो निंदक मोरा,
रामदेव, तुम करौं निहोरा।
निंदक बपुरा पर-उपकारी,
'दादू' न्यंदा करै हमारी।

[दादूदयाल

२

निंदक नियरे राखिए, आँगन कुटी छवाय;
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करै सुभाय।

[कबीर

३

निंदक बपुरा जिन मरै, पर-उपकारी सोइ;
हमकूँ करता ऊजला, आपण मैला होइ।

[दादूदयाल

: १५ :

"निंदक बाबा बीर हमारा"

१. बाबा, निंदक तो मेरा प्यारा भाई है—
बेचारा बिना ही पैसे-कौड़ी के काम करता रहता है—
करोड़ों कर्मों के पाप काटकर फेंक देता है,
और बिना ही मुआवज़ा लिये मेरा सारा काम सँभालता है।
खुद डूबकर दूसरों को तारता है,
पार उतारनेवाला मेरा वह ऐसा प्रिय बन्धु है।
मेरा निंदक प्यारा जुग-जुग जिये!
राम, तुमसे मेरी यही विनती है।
मैं तो बेचारे निंदक को परोपकारी ही कहूँगा—
मेरी निंदा कर-कर मेरा वह उपकार ही करता है।

२. आँगन में कुटिया बनवाकर
निंदक को तो सदा अपने ही पास रखना चाहिए;
बिना ही पानी और बिना ही साबुन के
सहज में वह मन का मैल धो देता है।

३. हे राम, निंदक को कभी मौत न आये—
बेचारा कितना परोपकारी है!
अपने ऊपर खुद गंदगी ओढ़कर
हमें साफ़ और निर्मल कर देता है।

४

देखिकै निंदकहिं करौं परनाम मैं,
"धन्य महाराज, तुम भक्त धोया।
किया निस्तार तुम आइ संसार में,
भक्त कै मैल बिनु दाम खोया।
भयो परसिद्ध परताप से आपके,
सकल संसार तुम सुजस बोया।"
दास पलटू कहै, निंदक के मुए से,
भया अकाज मैं बहुत रोया।

[पलटूदास

४. निंदक को तो देखते ही मैं प्रणाम करता हूँ—
"महाराज ! तुम धन्य हो,
तुमने प्रभु के भक्तों का अहंकार-मल साफ़ कर दिया।
संसार में जन्म लेकर तुमने दूसरों का उद्धार किया,
भक्तों के अंतर का मैल तुमने मुफ्त ही धो दिया।
तुम्हारे प्रताप से मैं जगत् में प्रसिद्ध हो गया,
सारे जगत् में तुमने सुयश का बीज बो दिया।"
मेरे निंदक के मर जाने से
मेरी बहुत हानि हुई,
और मैं उस दिन बहुत रोया।

"साँच बराबर तप नहीं"

१

साँचा नाँव अलखाह का, सोई सत करि जाणि;
निहचल करले बंदगी, 'दादू' सो परवाणि।

[दादूदयाल

२

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप;
जाके हिरदे साँच है, ता हिरदे हरि आप।

[कबीर

३

लेखा-देना सहज है, जो दिल साँचा होय;
साईं के दरबार में, पला न पकरै कोय।

[कबीर

४

दया-धर्म का रूखड़ा, सत सों बधता जाइ;
संतोष सों फूलै-फलै, 'दादू' अमरफल खाइ।

[दादूदयाल

५

सत समरथ तें राखि मन, करिय जगत् का काम;
'जगजीवन' यह मंत्र है, सदा सुक्ख-बिस्राम।

[जगजीवन

६

झूठे को तजि दीजिए,
साँचे में करि गेह।

[चरनदास

: १६ :

"साँच बराबर तप नहीं"

१. नाम तो अल्लाह का ही सच्चा है,
केवल उसीको 'सत्य' समझना चाहिए।
स्थिरबुद्धि से तू उसी सतनाम की खिदमत कर;
यही एक प्रामाणिक बात है।

२. सत्य के समान दूसरा तप नहीं,
और असत्य के समान दूसरा पाप नहीं;
जिसके हृदय में सत्य बसता है।
उस हृदय में, समझो, स्वयं प्रभु का निवास है।

३. दिल अगर सच्चा है, तो प्रभु के दरबार में
कर्मों का हिसाब देना बहुत सहज है;
फिर वहाँ तेरा कोई पल्ला पकड़नेवाला नहीं।

४. सत्य का जल पाकर
दयाधर्म का वृक्ष नित्य बढ़ता ही जाता है,
और वह संतोष से फूलता-फलता है,
बड़भागी हैं वे, जो उसका अमृत-फल चखते हैं।

५. यदि तू सदा सुख और शांति चाहता है;
तो यह महामंत्र सीख ले—
"तू मन तो अपना 'सत् समर्थपुरुष' में लगाये रख,
और जगत् के कर्त्तव्य-कर्म करता जा।"

६. असत्य को तू छोड़ दे,
और अपना आश्रय-स्थान सत्य में बना ले।

७

आदि सचु, जुगादि सचु
है भी सचु 'नानक' होसी भी सचु।

[नानक

८

सूधा मारग साँच का, साँचा होइ सो जाइ;
झूठा कोई ना फलै, 'दादू' दिया दिखाइ।

[दादूदयाल

९

'दादू' देखै साईं सोई,
साँच बिना सन्तोष न होई।

[दादूदयाल

१०

हम सत्यनाम के बैपारी।
कोइ-कोइ लादै काँसा-पीतल, कोइ-कोइ लौंग-सुपारी;
हम तो लादा नाम धनी का, पूरन खेप हमारी।
पूँजी न टूटै नफा चौगुना, बनिज किया हम भारी;
हाट जगाती रोक न सकिहै, निर्भय गैल हमारी।

[धर्मदास

११

'पलटू' नेरे साँच के, झूठे से है दूर;
दिल में आवै साँच जो, साहिब हाल हुजूर।

[पलटूदास

७. आदि में सत्य था, युगादि में सत्य था,
सत्य आज भी है,
और आगे भी सत्य रहेगा।

८. सत्य का रास्ता तो बिल्कुल सीधा है,
जो सच्चा हो, वह इस रास्ते से सीधा चला जाये;
हमें तो दिखाई यह दिया है, कि
सत्य के मार्ग पर कोई झूठा नहीं चल सकता।

९. बिना सत्य के इस जीव को कभी संतोष नहीं हो सकता;
प्रभु का दर्शन सत्य-संतोषी ही कर सकता है।

१०. हम तो, बाबा, 'सत्यनाम' के व्यापारी हैं!
कोई तो काँसा-पीतल लाद-लादकर लाते हैं,
और कोई लौंग-सुपारी का बनिज करते हैं;
पर हम तो स्वामी के सत-नाम की
पूरी खेप लादकर लाये हैं।
इस बनिज में कभी पूँजी की कमी नहीं आई,
और लाभ चौगुना होता है।
हाट-बाजार में न हमें ज़कात वसूलने वाला रोक सकता है।
न हमारे रास्ते में किसी तरह का कोई डर या अंदेशा है।
मोती हमारे अंतर्घट में ही उपजते हैं,
और सुकर्मों से भंडार भरा-पूरा रहता है।
सत-नाम का अनमोल माल लादकर हम बनिज करने जा रहे हैं।

११. हमारा स्वामी तो सच्चे के ही निकट रहता है,
झूठों से तो वह कोसों दूर है;
दिल में अगर सत्य प्रकट हो जाये,
तो स्वामी तो सदा हाज़िर ही है।

: १७ :

"भावैं सौ-सौ गोते लाय"

१

गया गयां गल्ल मुकदी नहीं,
भावैं कितने पिंड भराय,
'बुल्लेशाह' गल्ल ताईं मुकदी;
जब "मैं" खड़यां लुटाय।

[बुल्लेशाह

२

'बुल्ला' मक्के गयो गल्ल मुकदी नहीं,
जिचर दिलों न आप मुकाय;
गंगा गयां पाप नहिं छुटदे,
भावैं सौ-सौ गोते लाय।

[बुल्लेशाह

३

साहिब जिनके उर बसै, झूठ कपट नहिं अंग;
तिनका दरसन न्हान है, कहँ परबी फिर गंग।

[गरीबदास

४

तीरथ-बरत न करौं अँदेसा,
तुम्हरे चरनकमल का भरोसा।
जहँ-जहँ जाओं तुमरी पूजा,
तुम-सा देव और नहिं दूजा।

[रैदास

: १७ :

"भावैं सौ-सौ गोते लाय"

१. गया जाने से बात खत्म नहीं होती,
वहाँ जाकर तू चाहे कितना ही पिंड-दान दे।
बात तो भाई तभी खत्म होगी,
जब तू खड़े-खड़े इस 'मैं" को लुटा देगा।

२. मक्का जाने से बात खत्म नहीं होती,
और गंगा जाने से पाप नहीं छूटते,
चाहे तुम वहाँ सैकड़ों गोते लगाओ—
जबतक तुमने अपने दिल से आपा नहीं त्यागा,
तबतक यह आवागमन की बात खत्म होने की नहीं।

३. जिनके हृदय-गृह में ईश्वर बसता है,
असत्य और कपट का जहाँ अंश भी नहीं,
उनका दर्शन ही तीर्थ-स्नान है—
कहाँ का तुम्हारा पर्व; और कहाँ का गंगा-स्नान?

४. न मैं तीर्थ जाता हूँ, न कोई व्रत-उपवास करता हूँ;
मुझे इसकी कोई फिक्र भी नहीं,
मुझे तो स्वामी, एक तुम्हारे चरण-कमलों का भरोसा है।
जहाँ-जहाँ जाता हूँ, तुम्हारी पूजा कर लेता हूँ;
तुम्हारे समान पूजने योग्य जगत् में दूसरा और देखता नहीं।

५

जोग-जग्य तें कहा सरै तीरथ-ब्रत-दाना,
ओसै प्यास न भागिहै, भजिए भगवाना।

[नामदेव

६

'पलटू' तीरथ को चला, बीचे मिलिगे सन्त;
एक मुक्ति के खोजते, मिलि गई मुक्ति अनन्त।

[पलटूदास

७

जल-पखान के पूजते, सरा न एकौ काम;
'पलटू' तन कह देहरा, मन कर सालिग्राम।

[पलटूदास

५. योग या यज्ञ से क्या बननेवाला है,
न तीर्थ, व्रत या दान ही कुछ काम देंगे;
भगवान का भजन करो—
ओस की बून्दें चाटने से कहीं प्यास बुझती है ?

६. चला तो मैं तीर्थ-यात्रा को था,
पर बीच में हो गया सन्तजनों का समागम।
निकला तो था मैं एक ही मुक्ति की खोज में,
पर यह तो मुझे अनन्त मुक्तियों का अनायास लाभ हो गया।

७. पानी और पत्थरों को तूने काफी पूजा की,
पर उससे तेरा एक भी काम न बना।
अब तू अपनी काया का तो बना मन्दिर,
और प्रतिमा बना मनरूपी शालिग्राम की—
इस देवाराधान से ही तेरी साधना सफल होगी।

: १८ :

"कहुधौं छूत कहाँ ते उपजी ?"

१

पंडित, देखहु मन महँ आनी ।
कहुधौं छूत कहाँ ते उपजी,
तबहिं छूत तुम मानी ।
नादे-बिन्दे रुधिर के संगे,
घट ही महँ घट सपचै;
अष्टकवँल होय पुहुमी आया,
छूत कहाँ ते उपजै ?
लख चौरासी नाना बासन ?
सो सब सरि भो माटी,
एकै पाट सकल बैठाये,
छूत लेत धौं काकी ?
छूतहि जेवन, छूतहि अँचवन,
छूतहि जगत उपाया,
कहहि कबीर, सो छूत-विवर्जित,
जाके संग न माया ।

[कबीर

: १८ :

"कहुधौं छूत कहाँ ते उपजी ?"

१. पण्डितजी, मन में ज़रा समझ-बूझकर देखो तो—
भला कहो तो सही, यह छूतछात आखिर पैदा हुई कहाँ से ?
जन्म इसका कहीं-न-कहीं हुआ ही होगा,
तभी तो तुमने इसे माना !
पवन, वीर्य और रज के सम्बन्ध से
घट* के अन्दर ही घट × शरीर में परिवर्तित होकर बढ़ता है।
अनन्तर, अष्टदल कमल* से बालक पृथिवी पर आता है।
[क्या ब्राह्मण क्या चाण्डाल,
सबके जन्म की यही रीति है।]
फिर यह छुआछूत तुम्हारे कहाँ पैदा हो गई ?
चौरासी लाख योनियों के शरीर रूपी बर्तन
सड़-गलकर मिट्टी बन गये।
ईश्वर ने सब को एक ही पीढ़े पर बिठाया है;
भला अब बताओ, कौन-सा भाई अछूत हो गया ?
छूत से न तुम्हारा भोजन बचा है, न आचमन,
सच पूछो तो, सारी सृष्टि ही छूत से उत्पन्न है।
हाँ, छूत से यदि कोई बचा है,
तो केवल वही,
जिसके साथ माया नहीं है।

---

*गर्भाशय ×गर्भ *मणिपूरक, अर्थात् नाभिचक्र से नीचे

२

और के छुए लेत हो सींचा,
तुमतें कहो कौन है नीचा ?
ई गुन गरब करो अधिकाई,
अधिके गरब न होय भलाई ।

[कबीर

३

पाँडे, बूझि पियहु तुम पानी;
जिहि मटिया के घर महँ बैठे,
ता महँ सिष्टि समानी ।
हाड़ झरी झरि, गूद गरी गरि,
दूध कहाँतें आया ?
सो लै पाँडे जेंवन बैठे,
मटियहि छूत लगाया !

[कबीर

२. दूसरों का स्पर्श हो जाने पर तो
तुम पानी के छींटे शरीर पर छिड़कते हो,
[या, सवस्त्र स्नान की सलाह देते हो]
पर तुमसे नीच और दूसरा कौन है ?
इन गुणों (?) से तुम इतना अधिक अभिमान करते हो ?
अभिमान से किसी का भला नहीं हुआ।

३. पाँडेजी, आप जाति पूछकर पानी पीते हैं ?
[पर तनिक तत्त्वों के स्वरूप का भी तो विचार करें;]
जिस मिट्टी के घर में आप बैठे हैं,
उसमें सारी सृष्टि सड़-गलकर समा गई है।
पाँडेजी, जिस दूध को आप पी रहे हैं,
पता है, वह कहाँ से आया है ?
वह गाय की हड्डियों और मज्जा का स्पर्श करके निकलता है।
और आप मिट्टी को छूत लगा रहे हैं !
[किसी के केवल देने से धरती कहीं अपवित्र हो सकती है ?]

: १६ :

विविध

१

कत जाइए, घर लाग्यो रंगु,
मेरा चित न चलै मन भयउ पंगु।
एक दिवस मन उठी उमंग,
घसि चन्दन चोवा बहु सुगन्ध।
पूजन चाली ब्रह्म-ठाइँ,
सो ब्रह्म बतायौ गुरु मनहि माहिं।
जहाँ जाइए तहँ जल-पखान,
तू पूरि रह्यौ है सब समान।
बेद-पुरान सब देखे जोइ,
वहाँ जाइए जहँ तू न होइ।
सतगुरु, मैं बलिहारी तोर,
जिनि सकल बिकट भ्रम काटे मोर।
रामानन्द स्वामी रमत ब्रह्म;
गुरु का शब्द काटै कोटि करम।

[रामानन्द

२

रँडियाँ एह न आँखियन, जिनके चलन भर्तार:
रँडियाँ सेई 'नानका,' जिन बिसरियां करतार।

[नानक

: १६ :

विविध

१. मैं जाऊँ कहाँ ? और कैसे जाऊँ ?
मुझे तो प्रेमरंग घर ही में लग गया है;
मेरा चित्त अब कहीं जाता ही नहीं,
मन मेरा पंगु हो गया है।
एक दिन मन में कुछ ऐसी उमंग उठी
कि खूब सुगन्धित चंदन-चोवा लेकर
ब्रह्म-मंदिर में, मैं ब्रह्मदेव को पूजने चली,
पर सतगुरु ने तो ब्रह्म का ठौर मन में ही बता दिया।
जहाँ भी जाऊँ, वहाँ जल और पाषाण ही दृष्टि आता है;
और तू सर्वत्र समानरूप से व्याप्त हो रहा है।
वेद-पुराण सब उलट-पुलटकर देख डाले,
अब कहाँ जाऊँ ?
जहाँ तू न हो, वहीं जाना चाहिए।
पर तुझसे खाली जब कोई ठौर हो !
सतगुरु, मैं तुझ पर क़ुर्बान हूँ,
मेरी तमाम विकट भ्रांतियों को तूने काट डाला।
धन्य ! मुझे 'ब्रह्म-रमण' की अवस्था प्राप्त हो गई;
कर्म-पाश को सतगुरु का शब्द-बाण ही काट सकता है।

२. राँड़ वह नहीं कहलाती,
जिसका खाविन्द चल बसा हो;
राँड़ तो असल में वह है,
जिन्होंने प्यारे कर्त्तार को भुला दिया है।

३

देखि अजाणाँ अहियाँ, पासँगु मुहणु किराव;
तत्ते तावया ताइयहि, मुहिं मिलनीयाँ अँगियार।

[नानक

४

जे पहुँचे ते कहि गये, तिनकी एकै बाति;
सबै सयाने एकमत, उनकी एकै जाति।

[दादूदयाल

५

सुनत चिकार पिपील की, ताहि रटहु मन माहिं;
'दूलनदास' बिस्वास भाज, साहिब बहिरा नाहिं।

[दूलनदास

६

मौला, जल स थल करै, थल से जल करि देत;
साहिब, तेरी साहिबी, स्याम कहूँ की सेत।

[ग़रीबदास

७

दिल के अन्दर देहरा, जा देवल में देव;
हरदम साखीभूत है, करो तासु की सेव।

[ग़रीबदास

८

एते करता कहाँ हैं, वहाँ तो साहिब एक;
जैसे फूटी आरसी, टूक-टूक में देख।

[ग़रीबदास

३. वे बनिये गरम-गरम तंदूर में भूने जायेंगे,
और उनका मुँह अंगारों से भरा जायेगा,
जो अनजान किसान-स्त्रियों को देखकर पासंग मारते हैं।

४. जो असल ठिकाने पर पहुँच गये,
उन सबने तो एक ही बात कही है;
सब तत्त्वदर्शियों का मत एक ही है,
और उनकी कौम भी एक है।

५. तुम तो उसी प्रभु का नाम सदा रटा करो
जो चींटी की भी आर्त्त-पुकार सुन लेता है।
तुम उसे विश्वासपूर्वक भजो, वह ज़रूर सुनेगा,
हमारा घट-घटवासी स्वामी बहरा नहीं है।

६. स्वामी क्या कहूँ तेरी साहिबी को!
स्याह कहूँ या सफेद?
मेरे मौला, अजब है तेरी लीला!
तू जल को स्थल में बदल देता है,
और स्थल को जल में!

७. देवल तो इस दिल के अन्दर ही है,
उसी देवल में तेरा देवता विराजमान है।
प्रत्येक श्वास इस बात की साखी दे रहा है।
तू अपने उसी आत्मदेव की सेवा-बंदगी कर।

८. वह सरजनहार स्वामी तो एक ही है,
ये इतने तमाम कर्त्तार कहाँ से आगये?
यह तो निरी भ्रान्ति है।
टूटे हुए दर्पण के हरेक टुकड़े में सूरत तो वही दीखती है।

९

पापी का घर अगिनी माहिं;
जलत रहै, मिटवै कब नाहिं।

[नामदेव

१०

खाटा-मीठा खाइ करि, स्वाद चित्त दीया;
इनमें जीव बिलम्बिया, हरि नाम न लीया।

[दादूदयाल

११

पूजै देव दिहाड़िया, महामई मानै,
परगट देव निरंजना, ताकी सेव न जानै ?

[दादूदयाल

१२

भेष लियो पै भेद न जान्यो,
अमृत लेइ, बिषै सों मान्यो।
काम-क्रोध में जनम गँवायो,
साधु-संगति मिलि राम न गायो।
तिलक दियो, पै तपनि न जाई,
माला पहिरे घनेरी लाई।
कह रैदास, मरम जो पाऊँ,
देव निरंजन सत करि ध्याऊँ।

[रैदास

१३

फूटी नाव समुद्र में, सब डूबन लागे,
अपणा-अपणा जीव ले सब कोई भागे।

[दादूदयाल

९. पापी का घर तो आग के बीचोंबीच समझो;
वह सदा जलता-बलता ही रहता है।
पाप की आग यों बुझने वाली नहीं।

१०. खट्टी-मीठी चीजें खा-खाकर
सदा स्वाद में ही चित्त लगाये रहा।
यह मूढ़ प्राणी इन विषय-स्वादों में ही रम गया।
प्रभु का नाम इसने कभी भूलकर भी न लिया!

११. भला, देखो तो मनुष्य की मूर्खता!
मन्दिरों में दुनिया-भर के देवतों को पूजता फिरता है,
और देवीमाई की मनौती भी मनाता है,
पर प्रत्यक्ष निरंजनदेव की सेवा-बन्दगी से बेखबर है!

१२. फकीर का भेष तो बना लिया,
पर असली भेद तक न पहुँच सका।
अमृत ले तो लिया,
पर प्रेम-विषयों के बिष में ही रहा।
जीवन सारा काम और क्रोध में ही गँवा दिया,
साधुओं के साथ बैठकर कभी राम का गुणगान न किया।
तिलक तो लगाता रहा, पर हृदय की जलन न गई,
और मालाएँ भी बहुत-सी गले में डाल लीं।
असली भेद का अब भी मुझे पता चल जाये,
तो मैं निरंजनदेव का सच्चे दिल से ध्यान करने लग जाऊँ।

१३ बीच समुन्दर में, नाव में छेद हो गया,
और सब आरोही डूबने लगे,—
अपना-अपना जी लेकर सब भाग गये।

१४

जीव की दया जेहि जीव व्यापै नहिं,
भूखे न अहार, प्यासे न पानी;
राम को नाम, निजधाम, विश्राम नहीं,
'धरनी' कह धरनि पै विक लो प्रानी;

[धरनीदास

१५

जे पहुंचे ते पूछिए, तिनकी एकै बात;
सब साधों का एक मत, बिच के बारह-बाट।

[दादूदयाल

१६

वहाँ न दोजख, भिस्त मुकामा,
यहाँ ही राम, यही रहमाना।

[कबीर

१७

वेद-कतेब कहौ क्यूँ झूठा ?
झूठा, जो न विचारै।

[कबीर

१८

कहै कबीर, मैं हरि-गुन गाऊँ,
हिन्दू-तुरक दोउ समझाऊँ।

[कबीर

१९

काजी सो, जो काया बिचारै।
अहनिसि ब्रह्म-अगिनि परजारै।
सुपनेहुँ बिंद न देई झरना,
ता काजी कूँ जरा न मरना।

१४. जिस मनुष्य पर जीव-दया असर नहीं करती,
जो भूखे को आहार और प्यासे को पानी नहीं देता,
जो राम का नाम नहीं लेता,
और आत्मा के परमधाम को जो अपना विश्राम-स्थान नहीं बनाता,
धिक्कार है इस पृथिवी पर ऐसे विमूढ़-प्राणी को !

१५. पहुँचे हुए से ही वहाँ की बात पूछनी चाहिए,
वे सब एक ही बात बतायेंगे ।
दुनियाभर के संतों का एक ही मत है—
ये बारह बाटो तो सब अधबीच के हैं ।

१६. वहाँ कहीं न नरकलोक है, न स्वर्गलोक;
यहीं, इसी लोक में राम है, और यहीं रहमान ।

१७. वेद और कुरान को क्यों झूठा कहते हो ?
झूठा तो वही, जो इनपर यथार्थ विचार नहीं करता ।

१८. मैं तो हरि का गुण-गान करता हूँ,
और हिन्दू-मुसलमान दोनों को यही सारतत्व समझता हूँ ।

१९. काजी वह, जो काया का यथार्थ विचार करता है,
जो दिन-रात 'ब्रह्म-अग्नि' को प्रज्वलित रखता है ।
जो स्वप्न में भी वीर्य-पात नहीं होने देता,
उस काजी को न वृद्धावस्था का भय है; न मृत्यु का ।

२०

हम तो राम नाम कहि उबरे,
बेद-भरोसे पाँडे डूब मरे ।

[कबीर

२१

'बुल्ला' होर ने गलड़ियाँ,
इक अल्ला अल्ला दी गल्ल,
कुझ रौला पाया आलमा,
कुझ कागजां पाया झल्ल ।

[बुल्लेशाह

२२

'बुल्ला' मुल्ला ते मसालची,
दोहयाँ इक्को चित्त,
लोकां करदे चाँदना,
आप हनेरे विच्च ।

[बुल्लेशाह

२३

पाधे मिस्सर अंधले, काजी मुल्ला कोर ।

[नानक

२४

बुत पूजत हिन्दू मुये, तुरक मरे सिर नाई,
ओई लै जारै, ओइ लै गाड़ै, तेरी गति दूहूँ न पाई ।

[कबीर

२५

'दरिया' बहु बकवाद तज, कर अनहद से नेह,
औंधा कलसा ऊपरे, कहा बरसावै मेह ।

[दरिया

२०. हम तो, भाई, राम का नाम लेकर पार हो गये,
डूबे तो ये पाँडे, और यह पण्डित,
जो वेदों के विश्वास में बेख़बर बैठे रहे।

२१. मुझे और बकवास से मतलब नहीं—
अल्लाह की बात ही मेरे लिए सब कुछ है,
यह रौला कुछ तो विद्वानों ने मचा रखा है,
और कुछ इन किताबों ने झमेले में डाल दिया है।

२२. मुल्ला और मशालची दोनों एक ही मत के हैं,
औरों को तो ये ज्ञान और प्रकाश देते हैं,
और खुद अज्ञान और अंधकार में फंसे रहते हैं!

२३. ये पुरोहित और ये ब्राह्मण तो अंधे हो गये हैं,
और काजी और मुल्ले ज्ञान की रेख से बिल्कुल कोरे हैं।

२४. मूर्त्तियाँ पूजते-पूजते हिन्दू मर गये हैं,
और मुसलमान मर गये नमाज पढ़ते-पढ़ते।
हिन्दू अपने मुर्दे को जलाते हैं,
और मुसलमान दफनाते हैं।
पर तेरी थाह, तो इनमें से किसी को न मिली।

२५. यह सारी बकवास छोड़ दे,
तू तो अनहद-ब्रह्म से ही प्रीति जोड़।
अरे मूढ़, औंधे घड़े पर पानी बरसाने से कोई लाभ?

२६

रंजी सास्तर-ज्ञान की, अंग रही लिपटाय;
सतगुरु एकहि सब्द से, दीन्हीं तुरत उड़ाय। [दरिया

२७

दया बराबर तप नहिं कोई,
आतम-पूजा तासों होई। [चरनदास

२८

बैरभाव में अवगुन भारी,
तन छूटै जा नरक मँझारी। [चरनदास

२६

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो,
श्री रघुनाथ कृपालु-कृपा तें सन्त-सुभाव गहौंगो।
जथालाभ सन्तोष सदा, काहूसों कछु न चहौंगो;
परहित-निरत निरन्तर मन क्रम बचन नेम निबहौंगो।
परुष-बचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो,
बिगतमान, समशीतल मन, परगुन, अवगुन न कहौंगो।
परिहरि देह-जनित चिंता, दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो;
'तुलसिदास' प्रभु यहि पथ रहि, अबिचल हरिभक्ति लहौंगो।
[तुलसी

२६. शास्त्रज्ञान की अहंतापूर्ण धूल सारे शरीर में लिपट रही थी,
धन्य है सत्गुरु को!
जिन्होंने एक ही शब्द से उसे तुरन्त उड़ा दिया।

२७. दया के समान दूसरा कोई तप नहीं,
आत्मदेव की पूजा दया के योग से ही होती है।

२८. द्वेष-भाव में बहुत बड़ा पाप है;
शरीर छूटने पर वैरभाव रखनेवाला नरक-वास करता है।
हमेशा उसे अपने वैरी की ही याद रहती है,
यह द्वेष-भाव भगवान् से प्रीति नहीं लगने देता।

२९. कभी मैं यह रहनी रहूँगा?
कृपालु राम की कृपा से कभी संतों का स्वभाव प्राप्त कर सकूँगा?
जो कुछ मिल जाये उसीमें सन्तुष्ट रहना,
और किसीसे कुछ पाने की इच्छा न करना,
ऐसा स्वभाव क्या कभी मेरा बनेगा?
वह कितना अच्छा जीवन होगा, कि जब—
मैं सदा परोपकार में ही निरत रहूँगा,
इस नियम को मन से, वाणी से और कर्म से निबाहूँगा।
अत्यन्त असह्य कठोर वचन सुन उसकी आग में न जलूँगा,
किसीसे मान-सम्मान पाने की इच्छा न करूँगा,
मन को सदा समभावी और शीतल रखूँगा।
दूसरों के गुणों का तो बखान करूँगा,
पर उनके दोषों को नहीं कहूँगा।
शरीर-जनित चिन्ताओं को छोड़
सुख और दुःख को समबुद्धि से देखूँगा।
भला, वह संत-स्वभाव मुझे कब प्राप्त होगा, जब—
इस सत्य-मार्ग पर स्थित रहकर
अटल हरि-भक्ति प्राप्त कर सकूँगा!

३०

'दरिया' बौरे जगत को, क्या कीजै समझाय,
रोग नीसरै देह में, पत्थर पूजन जाय ।

[दरिया

३१

साध स्वाँग में आँतरा, जैसा दिवस औ रात,
इनके आसा जगत की, उनको राम सुहात ।

[दरिया

६२

नारी जनन जगती की, पाल-पोस दे पोष,
मूरख राम बिसार कर ताहि लगावै दोष ।

[दरिया

३३

कहा गृहस्थ, कहा त्यागी,
जेहि देखूँ तेहि बाहर-भीतर
घट-घट माया लागी ।

[दरिया

३४

काहे रे बन खोजन जाई ?
सर्वनिवासी सदा अलेपा, तो ही संग समाई ।
पुष्प मध्य ज्यों बास बसत है, मुकर माहिं जस छाईं,
तैसे ही हरि बसै निरन्तर, घट ही खोजै भाई ।
बाहर-भीतर एकै जानौ, यह गुरु-ज्ञान बताई,
जन 'नानक' बिन आपा चीन्हें, मिटै न भ्रम की काई ।

[नानक

३०. इस बावली दुनिया को समझाने से कोई लाभ ?
जरा देखो तो इसका पागलपन,
निकलता तो शरीर में चेचक का रोग है,
और ये बावले पूजने जाते हैं पत्थर के देवी-देवते !

३१. साधुओं और झूठे भेषधारियों में इतना अन्तर है,
जितना कि दिन और रात में,
ये भेषधारी दुनिया की आशा लगाये रहते हैं,
और सच्चे साधुओं का प्रेम राम से रहता है।
एक काम-कंचन के दास हैं, दूसरे राम के।

३२. नारी जगत् की जननी है,
जो विश्व का पालन-पोषण करती रहती है।
पर ये मूढ़जन राम से विमुख होकर
नारी को सदा निन्दा ही करते रहते हैं।

३३. क्या तो गृहस्थ और क्या विरक्त—
जिसे भी देखता हूँ उसे माया लगी हुई है,
बाहर-भीतर सबका यही हाल है,
माया से कोई भी अछूता नहीं बचा।

३४. तू उसे जंगल में क्यों खोजने जाता है ?
वह घट-घट-वासी सदा अलिप्त रहनेवाला स्वामी तो
तेरे रोम-रोम में समाया हुआ है।
जैसे फूल में सुगन्ध बसती है,
और दर्पण में प्रतिबिम्ब,
उसी तरह प्रभु तेरे अन्दर ही निरन्तर बस रहा है।
भाई, तू उस प्रियतम को अपने घट में ही खोज,
बाहर-भीतर सर्वत्र उसी प्रभु का वास है—
मुझे तो सतगुरु ने यही ज्ञान बताया है।
अपने आत्मदेव को पहचाने बिना
भ्रान्ति की यह काई कभी दूर होने की नहीं।

३५

नीक न लागै बिनु भजन सिंगरवा।
का कहि आयो, हियाँ करत्यो नाहीं,
भूलि गयल तोरा कौल-कररवा।
साँचा रँग हिये उपजत नाहीं,
भेष बनाय रँग लीन्हों कपरवा।
बिन रे, भजन तोरी ई गति होइहै,
बाँधल जैबे तू जम के दुवरवा।
'दूलनदास' के साईं जगजीवन,
हरि के चरन पर हमरो लिलरवा।

[दूलनदास

३६

तौ निबहै जन सेवक तेरा,
ऐसैं दया करि साहिब मेरा
ज्यूँ हम तोरैं, त्यूँ तू जोरै,
हम तोरैं पै तू नहिं तोरै।
हम बिसरैं, त्यूँ तू न बिसारै,
हम बिगरैं, पै तू न बिगारै।
हम भूलैं, तू आनि मिलावै,
हम बिछुरैं, तू अंग लगावै।
तू भावै सो हममें नाहीं,
'दादू' दरसन देहु गुसाईं।

[दादूदयाल

२५. बिना हरि-भजन के यह तेरा शृङ्गार अच्छा नहीं लगता।
तू क्या कहकर चला था, है कुछ याद?
जगत् में जन्म लेकर तूने वैसा वर्ताव तो नहीं किया,
तू अपना सारा कौल-करार भूल गया!
तेरे दिल में सच्चा रंग तो पैदा हुआ नहीं,
भंगवे कपड़े रँग कर फकीर का भेष बेशक तूने बना लिया?
बिना भजन के तेरी बुरी गति होगी—
यम के द्वार पर तुझे मुश्कें बाँधकर ले जायंगे।
मुझे तो बस एक सतगुरू का ही आसरा है,
और श्रीहरि के चरणों पर मेरा मस्तक है;
क्यों मैं कोई फ़िक्र करूँ?

२६. तेरे सेवक का निबाह तभी होगा स्वामी!
जब तू इस तरह अपने जन पर दया करेगा—
ज्यों-ज्यों हम तुझसे सम्बन्ध तोड़ें, त्यों-त्यों तू उसे जोड़ता जाये;
हम तोड़ दें पर तू न तोड़े।
हम तुझे भुला दें, पर तू हमें न भुलाये;
हम बिगाड़ने रहें, पर तू न बिगाड़े!
हम गलती करें, और तू सुधार दे;
हम तुझसे बिछुड़ जायें,
पर तू आकर हमें गले से लगा ले।
तुझे जो प्रिय है, वह हमारे पास नहीं है,
स्वामी, फिर भी मुझे अपना दर्शन देता जा,
तेरे सेवक का निभाव, बस, इसी तरह होगा।

———

सन्तों का संक्षिप्त परिचय

कबीर साहब

जीवन-काल—संवत् १४५६ से सं० १५७५ तक; जन्म-स्थान—काशी; लोक-श्रुति के अनुसार एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से जन्म; नीरू नामक एक मुसलमान जुलाहे के यहाँ पालन-पोषण; मंत्र-गुरू—श्री स्वामी रामानन्द; आश्रम—गृहस्थ।

कबीर उच्चकोटि के महात्मा थे। सत्य को उन्होंने सर्वोपरि माना। सत्य का साक्षात्कार किया। सुनी सुनायी नहीं, सब देखी ही कही। कबीर को कवि के असली अर्थ में उत्तर भारत का ही नहीं, बल्कि सारे भारतवर्ष का अद्वितीय कवि कहा जा सकता है। अधर्ममूलक रूढियों का उन्होंने बड़ा तीव्र खण्डन किया। हिन्दू-मुस्लिम धर्मों में अभेद की स्थापना की। अन्तर्रहस्य को अनोखे व अनूठे ढंग से खोला। निर्गुण-सुगुण की गुत्थी सुलझायी। कबीर की बानी वास्तव में अन्तर को बेधने वाली है। गूढ़ दार्शनिक सिद्धान्तों तक सर्वसाधारण को कबीर ने पहुँचा दिया। कबीर का भारतीय साहित्य में अनुपम स्थान है।

गरीबदासजी

जीवन-काल—सं० १७७४ से सं० १८३५ तक; जन्म-स्थान—बुड़ानी गाँव, जिला रोहतक (पंजाब); जाति—जाट; आश्रम—गृहस्थ।

यह कबीरदासजी को अपना गुरू मानते थे। शैली भी इनकी कबीर की ही जैसी है। सतों के यह अनन्य भक्त थे। ढोंग-पाखण्ड का खण्डन गरीबदासजी ने खूब किया है। लेकिन कबीरदासजी की तरह वेद-पुराण की निन्दा इन्होंने नहीं की। भाव ऊँचे और सुन्दर हैं।

गुरू नानक

जीवन-काल—सं० १५२६ से १५९५ तक; जन्म-स्थान—तलवंडी गाँव (जिला लाहौर); जाति—बेदी खत्री; आश्रम—गृहस्थ

गुरू नानक कबीर की ही भाँति बड़े ऊँचे महात्मा थे। बचपन से ही विचारशील और विवेकी थे। गृहस्थाश्रम में भी विरक्त-से रहते

थे। वैराग्य की अतुल निधि पाकर प्रभु के रंग में पूरे रँग गये। हरि-भजन में आठों पहर मस्त रहते थे। गुरु नानक ने बड़ी दूर-दूर की यात्राएँ कीं। भारत-भ्रमण ही नहीं किया, बलख, बुखारा, बगदाद, रूम और मक्के-मदीने तक पहुँचे। नानक के आध्यात्मिक विचार कबीरदास जी से बहुत मिलते-जुलते हैं। सिक्ख सम्प्रदाय के यह आदि-प्रवर्तक थे। गुरुनानक के पदों का संग्रह छठे गुरु अर्जुनदेव ने तैयार कराया। यह 'आदिग्रन्थ' अथवा 'ग्रन्थसाहब' के नाम से प्रसिद्ध है। इनके अन्य ग्रन्थ 'जपजी' 'सुखमनी' और 'अष्टांग जोग' हैं। इनकी साखियाँ भी बड़ी सुन्दर हैं।

गोस्वामी तुलसीदास

जीवन-काल—सं० १५८९ से सं० १६८० तक; जन्म-स्थान—राजापुर; जाति—सरयूपारी ब्राह्मण। पहले गृहस्थ पीछे विरक्त

गोस्वामी तुलसीदास का संक्षिप्त या विस्तृत परिचय क्या दिया जाय! 'रामचरित-मानस' आज 'गीता' की तरह सर्व-पूजित ग्रंथ है। कवि-कुल-गुरु संतवर तुलसीदास से आज कौन उऋण हो सकता है? तुलसीदास तो तुलसीदास थे, इतना ही कहा जा सकता है।

चरनदास जी

जीवन-काल—संवत् १७६० से सं० १८३९ तक; जन्म-स्थान—डेहरा गाँव (अलवर राज्य); जाति—दूसर वैश्य; गुरु—शुकदेवस्वामी।

१९ वर्ष की अवस्था में चरनदासजी ने शुकदेवजी से गुरु-मंत्र लिया, और उसके बाद यह स्थायी रूप से दिल्ली में रहने लगे। इनके ५२ मुख्य शिष्य थे। सुप्रसिद्ध सहजोबाई और दयाबाई इन्हीं की चेलियाँ थीं। चरणदासजी के विचारों पर कबीरदास की स्पष्ट छाया पड़ी है। ढोंग-पाखण्ड और विभिन्न मतों की इन्होंने, कबीरदास की ही तरह, कड़ी आलोचना की है। इनके ११ ग्रन्थों का पता चला है। चरनदासजी एक पहुँचे हुए सन्त और योगी थे।

जगजीवनदास जी

जीवन-काल सतनामियों के अनुसार संवत् १७२७ से सं १८१७

तक; जन्म-स्थान—सरदहा गाँव (ज़िला बाराबंकी); जाति—चंदेल क्षत्रिय; गुरु—बुल्ला साहब ।

इनके घर पर किसानी होती थी । सद्गुरु बुल्ला साहब से इनकी भेंट गाय-बैल चराते हुए जंगल में हुई थी। उन्होंने चेताया, और इन्हें अपने स्वरूप का ज्ञान हो गया। एक ऊँचे घाट के सन्त थे। इन्होंने बाद को अपना 'सतनामी' नामक पंथ चलाया। विनय का अंग इनकी बानी का बड़ा ही प्रभावोत्पादक है। कई पद तो बड़े मधुर और रसपूर्ण हैं। बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद से इनकी बानी का संग्रह दो भागों में प्रकाशित हुआ है।

जायसी

जीवन-काल—संभवत: सं० १५४६ से सं० १५९८ तक; जन्म-स्थान—गाज़ीपुर, निवास-स्थान—जायस (ज़िला रायबरेली); जाति मुसलमान; आश्रम—फ़क़ीर।

इनका नाम मुहम्मद था, मलिक उपाधि थी, और जायस के निवासी थे। बाद को 'जायसी' नाम से वह प्रसिद्ध हो गये। यह सूफ़ी थे। रहस्य-वाद के यह भारी संत-कवि थे। अपने क्षेत्र में इनके जोड़े का कवि शायद ही कोई हो। प्रेममय और ज्ञानवाद और ज्ञानमय प्रेमवाद का जो विवेचन जायसी ने अपने "पदमावत" में किया है, वह सचमुच अनुपम है। "अखरावट" भी इनकी ऊँचे घाट की आध्यात्मिक रचना है। हिन्दी-संत-साहित्य के यह दोनों ही ग्रन्थ अनमोल रत्न हैं।

तुलसी साहब

जीवन-काल—सं० १८२० से सं० १८९९ तक; जन्म-स्थान—पूना; निवास-स्थान—हाथरस; जाति—महाराष्ट्रीय ब्राह्मण; पहले गृहस्थ, पीछे विरक्त; गुरु का नाम अज्ञात।

लोकश्रुति के अनुसार यह बाजीराव पेशवा के बड़े भाई थे। नाम श्यामराव था। वैराग्य का गहरा रंग चढ़ा और घर से निकल भागे। हाथरस में आकर स्थायी रूप से रहने लगे। सुरतयोग के यह एक पहुँचे

हुए संत थे। तुलसी साहब के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'घट-रामायण', 'रत्नसागर', 'सुरत-विलास' और 'शब्दावली' हैं।

तुकाराम जी

जीवन-काल—संवत् १६२५ से सं० १७०६ तक; जन्म-स्थान—देहू गाँव (पूना के पास); जाति—कुनबी; आश्रम—गृहस्थ।

महाराष्ट्र के चार सुप्रसिद्ध संतों में तुकाराम महाराज की गणना होती है। वे हरि-भजन में निरन्तर मग्न रहा करते थे। विट्ठल भगवान् के परम भक्त थे। शिवाजी भी इनका कीर्तन सुनने आया करते थे। तुकाराम के अभंग महाराष्ट्र में आज भी घर-घर गाये जाते हैं। इनकी पाँच-दस साखियाँ और एक-दो पद हिन्दी के भी मिलते हैं।

दरिया साहब

दरिया साहब नाम के दो संत हुए हैं—एक बिहार के; दूसरे मारवाड़ के।

बिहार वाले दरिया साहब का जन्म धरकन्धा (ज़िला आरा) में हुआ था। जाति के खत्री थे। अनुमान से इनका जन्म-संवत् १७३१ माना जाता है। चोला संवत् १७३७ में छोड़ा। इनके पंथ वाले इन्हें कबीरदास का अवतार मानते हैं। बड़े विरक्त थे। वेद-पुराण, जात-पाँत, पूजा-नमाज़, व्रत-रोज़ा आदि की इन्होंने बड़ी टीका की है। इनके मुख्य ग्रन्थ का नाम 'दरिया-सागर' है।

मारवाड़ वाले दरिया साहब जाति के मुसलमान धुनियाँ थे। जीवन-काल इनका संवत् १७३३ से सं० १८१५ तक माना जाता है। जन्म-स्थान जैतारन गाँव है। गुरु का नाम प्रेमजी था। वह भी बड़े ऊँचे घाट के सन्त थे। इनकी बानी का संग्रह भी बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ है।

दयाबाईजी

दयाबाई सहजोबाई की गुरु-बहन थीं। यह भी महात्मा चरनदास की चेली थीं और इनका भी जन्म दूसर कुल में हुआ था। इनका

जन्म-काल एवं मृत्यु-काल अनिश्चित है। 'विनय-मालिका' और 'दया-बोध' नाम के इनके दो ग्रन्थ खोज में मिले हैं। इनकी बानी बड़ी मधुर और प्रसादगुणपूर्ण है।

दादूदयालजी

जीवन-काल—संवत् १६०१ से सं० १६६० तक; जन्म-स्थान-अहमदाबाद; जाति—धुनियाँ; सत्संग-स्थान—राजपूताना; आश्रम—गृहस्थ।

यह भारी दयालु थे, इसी कारण इनका नाम दादूदयाल पड़ गया। संत-साहित्य में कबीर के बाद इन्हीं पर दृष्टि जाती है। आत्म-साक्षात्कार से दादू की रचनाएँ रँगी हुई हैं। बड़े ऊँचे घाट की बानी है। आत्मानुभव उसमें अथाह है। संकीर्णता कहीं छू नहीं गई। भाव इनके स्फटिक की नाई पारदर्शी हैं। समाज की हानिकर रूढ़ियों का महात्मा दादू ने भी खण्डन किया, किन्तु प्रहार इनके कोमल रहे।

दूलनदासजी

जीवन-काल—अनुमानतः अठारहवीं शताब्दी के पिछले भाग से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यतक वर्त्तमान थे। जन्म-स्थान—समेसी गाँव (ज़िला लखनऊ); जाति—सोमवंशी क्षत्रिय; गुरु—जगजीवन साहब।

भेद, प्रेम और उपदेश के अंग दूलनदासजी के बड़े सरस हैं। इनकी बानी का एक संग्रह बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ है।

धर्मदासजी

धर्मदास जी का समय पंद्रहवीं शताब्दी का पिछला भाग माना जाता है। कबीरदासजी के प्रमुख शिष्यों में इनकी गणना की जाती है। इनका जन्म बाँधोगढ़ (रीवाँ) में हुआ था. सत्संग-स्थान काशी था। कबीर के चोला छोड़ने पर उनकी गद्दी धर्मदासजी को ही मिली थी। विनय के पद इनके अनूठे हैं। इनकी बानी प्रेम-भक्ति की निर्मल रस-धारा है।

धरनीदासजी

जन्म-संवत्—१७१३. जन्म-स्थान—माँझी गाँव (ज़िला छपरा) जाति—कायस्थ. आश्रम—गृहस्थ।

धरनीदासजी ईश्वर-चिन्तन में ऐसे तल्लीन रहते थे कि इन्हें अपने शरीर तक का भान नहीं रहता था। संग-मात्र से दूर रहने थे। हरि-भजन इनके जीवन का सार था। बानी बड़ी मधुर और रसमयी है। 'धरनीदासजी की बानी' के नाम से इनके पदों का एक संग्रह प्रकाशित हुआ है।

नामदेवजी

नामदेवजी के जन्म-संवत् का अभी तक कोई अन्तिम निर्णय नहीं हुआ। किसी-किसी के मत से इनका जन्म-संवत् १३२७ माना जाता है, और कुछ विद्वानों के मतानुसार संवत् १४२७ निश्चित किया गया है। महाराष्ट्र के सुप्रसिद्ध महात्मा ज्ञानेश्वर महाराज के यह शिष्य थे। नामदेवजी जाति के दर्जी थे। पंढरपुर में इनका जन्म हुआ था। हिन्दी में भी इनके बहुत-से पद मिले हैं। कुछ पद नामदेव जी के आदिग्रन्थ में भी मिलते हैं। इनकी कुछ साखियां भी हैं। यह बड़े ऊँचे महात्मा थे। हरि-भक्तों में इनका नाम बड़े आदरभाव से लिया जाता है।

पलटूदासजी

अवध के नवाब शुजाउद्दौला के समय में पलटूदासजी विद्यमान थे, इतना ही इनके जीवन-काल के विषय में कहा जा सकता है। नागपुर जलालपुर (जिला फैजाबाद) गाँव में इनका जन्म हुआ था। जाति के काँदू बनिये थे। गुरू इनके बाबा जानकीदासजी थे। अधिकतर यह अयोध्या में ही रहे। इनकी बानी कबीरदासजी की बानी से बहुत ज्यादा मिलती-जुलती है। कहीं-कहीं तो ऐसा मालूम होता है, जैसे कबीर की बानी का भाष्य कर रहे हों। भाषा मँजी हुई और सरल है। इनकी कुण्डलियाँ संत-साहित्य में प्रसिद्ध हैं। इनकी रचनाओं का संग्रह तीन भागों में बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ है।

बुल्लेशाह

जीवन-समय—सं० १७६० से १८१० तक, जन्म-स्थान—जन-श्रुति के अनुसार रूम; सत्संग-स्थान—कुसूर (जिला लाहौर) जाति—मुसलमान; आश्रम—फ़कीर; गुरू—शाह इनायत।

यह एक प्रसिद्ध सूफी भक्त थे। शुरू से ही यह फ़क़ीर के भेष में रहे। कुरान की कुछ बातों और शरअ का खण्डन करने के कारण मौलवियों और मुल्लाओं से इनका हमेशा झगड़ा रहा। बानी इनकी बड़ी पैनी और गहरी है। कुसूर के एक गाँव में इनकी समाधि मौजूद है।

भीखा साहब

जीवन-काल—अनुमानतः सं० १७७० से सं० १८२० तक; जन्म-स्थान—खानपुर बोहना गाँव (ज़िला आज़मगढ़); निवास-स्थान—भुरकुड़ा गाँव (ज़िला गाज़ीपुर) गुरु—गुलाल साहब।

बानी भीखा साहब की स्पष्ट और सरस है। विनती और उपदेश के अंग इनके बड़े सुन्दर हैं। भीखासाहब की बानी का संग्रह बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ है।

मलूकदासजी

जीवन-काल—सं० १६३१ से सं० १७३६ तक, जन्म-स्थान—कड़ा (जिला इलाहाबाद) जाति—खत्री

बाबा मलूकदास हरिभजन में सतत मग्न रहना ही जीवन का एकमात्र सार समझते थे। हिन्दू, मुसलमान सभी को समान रूप में ईश्वर-भक्ति का उपदेश देते रहते थे। इनकी भाषा में अरबी-फारसी के काफी शब्द आये हैं। वैराग्य और प्रेम के अंग इनकी बानी के बड़े सुन्दर हैं मलूकदासजी की गद्दियाँ कड़ा, मुलतान, गुजरात, पटना, नैपाल और काबुल तक में स्थापित हैं। 'रत्नखान' और'ज्ञान बोध' ये दो पुस्तकें इनकी प्रसिद्ध हैं।

मीरा बाई

जीवन-काल—सं० १५७५ से सं० १६०३ तक; जन्म-स्थान—मेड़ता (जोधपुर)।

यह जोधपुर के बसानेवाले राव जोधाजी की प्रपौत्री थीं। इनका विवाह उदयपुर के महाराणा-कुमार भोजराजजी के साथ हुआ था। किन्तु बचपन से ही कृष्ण-भक्ति में लीन रहने के कारण अपना पति

इन्होंने 'श्री गिरधर गोपाल' को ही माना। विधवा हो जाने पर इनकी भगवद्-भक्ति और भी तीव्र हो गई। मंदिर में जाकर भक्तों और संतों के बीच श्रीकृष्ण की मूर्ति के आगे आनन्द-मग्न होकर नाचने-गाने लगीं। लोक-निन्दा के भय से स्वजनों ने इन्हें बहुत कष्ट दिये। अन्त में, घर छोड़कर वृन्दावन और फिर द्वारिका चली गयीं। जहाँ गयीं, वहाँ इनका महान् सम्मान हुआ।

उपासना इनकी माधुर्य भाव की थी। प्रेम की तन्मयता प्रत्येक पद में मिलती है। कुछ पदों में निर्गुण-पंथ की भी झलक मिलती है। एक-दो पदों में संत रैदास का इन्होंने गुरुवत् स्मरण किया है। चैतन्य महाप्रभु के संबन्ध में भी मीरांबाई के दो पद मिलते हैं। इनके गुरु कौन थे इसका ठीक-ठीक निश्चय नहीं हो सकता। इनके पद कुछ तो राजस्थानी और गुजराती-मिश्रित भाषा में हैं और कुछ शुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा में। मीरां का साहित्य में अनुपम स्थान है, इसमें संदेह नहीं।

यारी साहब

जीवन-काल—सं० १७२५ से सं० १७८० तक; निवास-स्थान—दिल्ली; जाति—मुसलमान; गुरु—बीरू साहब।

यारी साहब के शिष्य प्रसिद्ध सन्त बुल्ला साहब थे, उनके शिष्य गुलाल साहब, और उनके भीखा साहब हुए।

यारी साहब की बानी गहरी भक्ति से रँगी हुई है। भाव बड़े ऊँचे हैं। इनके शब्द बहुत थोड़े मिले हैं।

रामानन्दजी

'सन्तवाणी' में जो यह पद आया है कि "रामानन्द रमै एक ब्रह्म, गुरु को एक सबद काटै कोटि करम," वह कबीर के गुरु सुप्रसिद्ध स्वामी रामानन्द का नहीं है। यह पद ग्रन्थ साहब से उद्धृत किया गया है। यह पद किसी अन्य रामानन्द का है, जिनके सम्बन्ध में कुछ ज्ञात नहीं हो सका। यह कोई निर्गुण-पंथ के संत रहे होंगे। ग्रन्थ साहब में इन रामानन्द के दो पद मिलते हैं।

रैदासजी

जन्म-स्थान—काशी; कबीरदासजी के समकालीन; जन्म-संवत्—अज्ञात ; जाति—चमार ; गुरू—स्वामी रामानन्द ; आश्रम—गृहस्थ ।

रैदासजी एक ऊँचे संत थे। कहते हैं कि प्रसिद्ध मीराँबाई इनकी शिष्या थीं । काशी के आत्यभिमानी ब्राह्मण इनका पद-पद पर अपमान करते थे, फिर भी इनकी प्रतिष्ठा बढ़ती ही गई । बड़ी निर्मल और बेधक बानी है। भक्ति और ज्ञान का अद्भुत निचोड़ है। इनके शब्दों के संग्रह 'रैदासजी की बानी' और 'रैदासजी के पद' नाम से मिलते हैं। कुछ साखियाँ भी मिलती हैं ।

सदनाजी

जीवन-काल—कदाचित् पन्द्रहवीं शताब्दी का पिछला भाग; जन्म-स्थान आदि अज्ञात ।

सदना जाति के कसाई थे, पर जीव-हत्या नहीं करते थे। हरि-भक्तों में इनका आज भी बड़े आदर से नाम लिया जाता है। इनके पद बहुत ही कम मिलते हैं।

सहजोबाईजी

सं० १८०० में सहजोबाई विराजमान थीं । इनका जन्म राज-पूताना के एक प्रतिष्ठित ढूसर कुल में हुआ था । यह सन्त चरनदासजी की चेली थीं। गुरुभक्ति इनमें असीम थी। भाव बड़े मदुल, मधुर और मर्मस्पर्शी हैं। भाषा भी सरल है। स्त्री संत-कवियों में मीराँबाई के बाद इन्हीं का नाम लिया जा सकता है । इनका बनाया 'सहज-प्रकाश, नाम का ग्रन्थ मिलता है।

हरिदासजी

'सन्तवाणी' में जिन हरिदास का "अब हौं कासौं बैर करौं" पद आया है, उनका इतिवृत्त मालूम नहीं। तानसेन के गुरू प्रसिद्ध स्वामी हरिदास का पद नहीं है। यह कोई दूसरे हरिदास रहे होंगे।